उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

UGHY-103

भारतीय इतिहास
1556–1857 ई0 तक

खण्ड – 1 : मुगल साम्राज्य का चरमोत्कर्ष 3–36

इकाई 1 : जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर राज्यारोहण समस्याएँ, विजय एवं साम्राज्य पुनगर्ठन 5

इकाई 2 : अकबर राजपूत संबंध, दक्षिण नीति, धार्मिक नीति, उत्तर–पश्चिम सीमान्त नीति 11

इकाई 3 : जहाँगीरः राजपूत संबंध, दक्षिण एवं नूरजहाँ का प्रभाव 17

इकाई 4 : शाहजहाँः राजपूत संबंध, दक्षिण, उत्तर–पश्चिम, मध्य एशियाई नीति एवं स्वर्णकाल 24

इकाई 5 : मराठों का उत्कर्ष एवं शिवाजी 30

खण्ड – 2 : मुगल साम्राज्य का ह्रास 37–86

इकाई 1 : शाहजहाँ की मृत्यु के उपरान्त उत्तराधिकार का युद्ध 39

इकाई 2 : औरंगजेब : राजूपत संबंध एवं धर्मिक नीति 47

इकाई 3 : औरंगजेब : दक्षिण नीति एवं विफलता के कारण 58

इकाई 4 : उत्तरवर्ती मुगल शासक : नादिरशाह का आक्रमण 69

इकाई 5 : मुगल साम्राज्य के पतन के कारण 79

इकाई 3 : मध्यकालीन प्रशासनिक क्रियाकलाप एवं चुनौतियाँ 87–146

इकाई 1 : शेरशाह का शासन प्रबन्धन 89

इकाई 2 : मुगलों का शासन प्रबन्धन–केन्द्रीय, प्रान्तीय, स्थानीय प्रशासन, भू–राजस्व व्यवस्था 102

इकाई 3 : (क) मनसबदारी प्रथा 116

इकाई 3 : (ख) जागीरदारी प्रथा 123

इकाई 4 : मराठों का शासन प्रबन्धन 128

इकाई 5 : मुगलों के अन्तर्गत कृषि संकट, जाट, सतनामी, सिक्ख एवं बुंदेलखण्ड का विद्रोह 137

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, प्रयागराज

UGHY-103

भारतीय इतिहास
1556–1857 ई0तक

खण्ड – 1
मुगल साम्राज्य का चरमोत्कर्ष

इकाई – 1 5

जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर राज्यारोहण समस्याएँ, विजय एवं साम्राज्य पुनगर्ठन

इकाई – 2 39

अकबर राजपूत संबंध, दक्षिण नीति, धार्मिक नीति, उत्तर–पश्चिम सीमान्त नीति

इकाई – 3 65

जहाँगीरः राजपूत संबंध, दक्षिण एवं नूरजहाँ का प्रभाव

इकाई – 4 95

शाहजहाँः राजपूत संबंध, दक्षिण, उत्तर–पश्चिम, मध्य एशियाई नीति एवं स्वर्णकाल

इकाई – 5 119

गराठों का उत्कर्ष एवं शिवाजी

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय उत्तर प्रदेश
प्रयागराज

परामर्श समिति **UGHY-103**

प्रो0 सीमा सिंह — **कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज**

कर्नल विनय कुमार — **कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज**

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार — आचार्य इतिहास एवं प्रभारी निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी — आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो0 संजय श्रीवास्तव — आचार्य, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशाखा विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

प्रो0 संतोषा कुमार (ब्लॉक–1) — आचार्य, इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ. नम्रता प्रसाद (ब्लॉक–2) — एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास सी.एम.पी.पी.जी. कॉलेज, प्रयागराज

डॉ. (कुमारी) पंकज शर्मा (ब्लॉक–3 एवं 6) — सहायक आचार्य, इतिहास नानकदेव संस्कृत पी.जी.कॉलेज,मेरठ

डॉ. संतोष कुमार चतुर्वेदी (ब्लॉक–4) — आचार्य, इतिहास महामति प्राणनाथ पी.जी.कॉलेज,मऊ, चित्रकूट

डॉ0 तनवोर हुसैन (ब्लॉक–5) — सहायक आचार्य, इतिहास, जी.एफ.पी.जी. कॉलेज,शाहजहाँपुर

सम्पादक

प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी (ब्लॉक–1,3,4,5,6) — आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो. अरुणा सिन्हा (ब्लॉक–2) — आचार्य, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-ShareAlike 4.0 International License.

PEPE-068

ISBN : 978-93-94487-91-8

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से कर्नल विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित –२०२४

मुद्रक : चन्द्रकला यूनिवर्सल प्रा. लि. 42/7 जवाहरलाल नेहरू रोड, प्रयागराज.

इकाई –1

जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर, राज्यारोहण, समस्याएँ, विजय एवं साम्राज्य पुनगर्ठन की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर

1.2.1 राज्यारोहण

1.2.2 समस्याएँ

1.2.3 विजय अभियान

1.3 सारांश

1.4 शब्दावली

1.5 बोध प्रश्न

1.6 सहायक ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेगें–

- जलालद्दीन अकबर के प्रारम्भिक जीवन तथा उपलब्धियों के विषय में।
- भारतीय इतिहास में अकबर के योगदान के विषय में।

1.1 प्रस्तावना

मुगल शासकों में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण मध्य–युग के भारतीय शासकों में अकबर को श्रेष्ठ स्थान प्रदान किया गया है। मुगल–साम्राज्य को वास्तव में भारत में स्थापित करने, उसका विस्तार करने और उसे स्थायित्व प्रदान करने का श्रेय अकबर को है। इसके अतिरिक्त राजस्व और शासन में जिन नवीन और उदार सिद्धान्तों का उसने प्रतिपादन किया वह उसे भारत के ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व के महान शासकों में स्थान प्रदान करता है। प्रायः 350 वर्ष का मुसलमानी शासन उस समय तक भारत में अस्थिन था और एक भी मुसलमान शासक न तो अपने राजवंश को स्थिरता प्रदान कर सका था और न ही शासन के उन सिद्धान्तों को व्यवहार में ला सका था जिनके आधार पर एक विदेशी सत्ता और भिन्न धर्म के मतावलम्बी एक अन्य देश में स्थायी रूप से निवास करने या शासन करने का अधिकार प्राप्त कर पाते। अकबर से पहले केवल शेरशाह ने निःसन्देह प्रजा की भलाई के आधार पर शासन–सत्ता

स्थापित करने का प्रयत्न किया था, परन्तु शेरशाह को बहुत थोड़ा समय मिल सका था। उसकी नीति अभी अस्पष्ट ही थी और उसके प्रभाव के परिणामों को समझने का अवसर भी प्राप्त नहीं हुआ था कि उसकी मृत्यु हो गयी। अकबर को अपनी नीतियों एवं उनके प्रभाव को देखने के लिए एक लम्बा समय प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त वह निश्चय ही शेरशाह की तुलना में अधिक उदार, अधिक दृढ़ अधिक नीतिज्ञ और अधिक विशाल दृष्टिकोण वाला शासक सिद्ध हुआ। निस्सन्देह अकबर ने अपने राजवंश को स्थायित्व प्रदान किया और शासन के इन सिद्धान्तों का व्यावहारिक दृष्टि से प्रयोग किया जिनके आधार पर मुगल वंश और इस्लाम के समर्थक शासकों को एक विदेशी देश अथवा अपने से पृथक धर्म के मतावलम्बियों पर शासन करने का नैतिक अधिकार प्राप्त हो सका।

1.2 जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर

अमरकोट के राजा वीरसाल के यहाँ 15 अक्टूबर 1542 ई0 को हमीदा बानू बेगम के गर्भ से अकबर का जन्म हुआ। यह वह समय था जब हुमायूँ शेरशाह से परास्त होकर सिन्ध में इधर–उधर भटक रहा था। जिस समय हुमायूँ भारत से भागकर पर्शिया के शाह के यहाँ शरण के लिए गया उस समय वह अपने बेटे अकबर को कन्धार के निकट छोड़कर भागा। अस्करी ने अकबर को अपने संरक्षण में ले लिया 13 वर्ष की आयु में अकबर की भेंट अपने पिता से पुनः उस समय हुई जब हुमायूँ ने कन्धार और काबूल पर अधिकार कर लिया। यहाँ उसका नाम 'जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर' रखा गया। परन्तु एक बार पुनः अकबर को अपने पिता से बिछुड़ना पड़ा। एक युद्ध में कामरान ने बालक अकबर को कन्धार के किले की दीवार पर लटका दिया जबकि हुमायूँ की तोपें किले पर आग बरसा रही थीं। भाग्य से ही अकबर बच गया। पाँच वर्ष की आयु से अकबर अपने पिता के साथ ही रहा और उसकी शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। अकबर ने साहित्यिक शिक्षा में कोई रूचि नहीं दिखाई यद्यपि घुड़सवारी और अस्त्र–शस्त्र चलाने में वह निपुण हो गया। उसने गजनी और लाहौर के सूबेदार के रूप में कार्य किया और हुमायूँ की मृत्यु के समय वह पंजाब में सिकन्दर सूर को समाप्त करने के प्रयत्न में संलग्न था। इसी समय बैरम खाँ उसके संरक्षक के रूप में कार्य कर रहा था। हुमायूँ की मृत्यु की सूचना मिलने पर पंजाब में गुरूदासपुर जिले के निकट कलानौर नामक स्थान पर 14 फरवरी 1556 ई0 को अकबर को मुगल बादशाह घोषित किया गया। उसका राज्याभिषेक बैरम खाँ की देख–रेख में मिर्जा अबुल कासिम ने किया। उस समय अकबर 14 वर्ष की आयु को भी पूरा नहीं कर पाया था। सम्राट अकबर भारतीय शासकों की गौरवमयी परम्परा का एक महान शासक था। उसका व्यक्तित्व और कृतित्व उसे भारत ही नहीं विश्व के महान् शासकों की प्रथम पंक्ति में खड़ा करते हैं। आकर्षक व्यक्तित्व, सुपुष्ट शरीर और प्रखर मस्तिष्क का धनी अकबर अदम्य साहस, असाधरण प्रतिभा और अनेक शासकोंचित गुणों से विभूषित था। गैरेट के अनुसार अकबर एक साहसी सैनिक महान सेनानायक तथा बुद्धिमान शासक था। उसकी गणना इतिहास के महानतम सम्राटों में की जाती है।

1.2.3 विजय अभियान

मुगल साम्राज्य का विस्तार ऊपरी गंगा घाटी से लेकर मालवा, गांडवाना, राजस्थान, गुजरात, बिहार और बंगाल तक फैल गया। निःसन्देह इसका अधिकतर श्रेय अकबर की असीम स्फूर्ति, धैर्य और लगन तथा नेतृत्व के व्यक्तिगत गुणों को देना चाहिए। साथ ही अविश्वसनीय रूप से लंबे रास्ते तय करके निर्णायक अवसरों पर मौजूद होने की उसकी अप्रतिम क्षमता उसकी सफलता की आधार भूमि थी। लेकिन उसकी सफलता में सुयोग्य तथा समर्पित लोगों की एक पूरी मंडली के उदय और उनके योगदान का भी कुछ कम महत्व नहीं था। प्रतिभा को पहचानने की अकबर की योग्यता श्रेष्ठ थी जिनमें से कुछ की सामाजिक पृष्ठभूमि तो अति साधारण हुआ करती थी। आगे बढ़ाने की नीति के फलस्वरूप प्रतिभावान व्यक्तियों के लिए शासन के द्वार अभूतपूर्व से खुल गए। एक शासक के रूप में सम्राट अकबर की सफलता का सबसे बड़ा आधार यह था कि उसने विभिन्न राज्यों, विभिन्न जातियों तथा विभिन्न सम्प्रदायों के लोगों को एक सूत्र में बाँधने का सराहनीय कार्य किया। मुगल सम्राटों में अकबर सबसे अधिक महान् शासक था। हजार वर्ष में जितने शासक हुए, उनमें वह महानतम था। शूरता और साहस में उसकी तुलना यूनान के सिकन्दर महान फांस के नेपोलियन बोनापार्ट से तो महत्वाकांक्षा में चन्द्रगुप्त मौर्य और शासन सुधार व जनकल्याण में सम्राट अशोक की तरह तो राजनीति में स्पेन के फिलिप द्वितीय और फ्रांस लुई चौदहवें से की जा सकती है। एक शासक के रूप में उनकी बड़ी सफलता यह थी कि उन्होंने भिन्न–भिन्न जातियों, राज्यों को एकसूत्र में बांध दिया था। वह एक साहसी सैनिक, वीर योद्धा, सफल सेनानायक, महान् योद्धा, प्रजावत्सल शासक, कलाप्रेमी, साहित्यानुरागी, उदार सहिष्णु, धार्मिक शासक थे। उनके शासन काल में प्रजा सुख और शान्ति से जीवन व्यतीत कर रही थी। अकबर का सौभाग्य था कि उन्हें बैरम खाँ जैसा योग्य, अनुभवी व ईमानदार संरक्षक मिला जिसके सहयोग से उन्होंने सर्वप्रथम अपने विरोधी शाह अबुल माली को बन्दी बनाया। 1560 के बाद उन्होंने मालवा पर विजय, अफगानों पर विजय जौनपुर के सामन्त खान जमां पर विजय मेड़ता पर विजय, गोंडवाना, चित्तौड़, रणथंभौर, कालिंजर मारवाड़, बीकानेर, गुजरात, बिहार, बंगाल, मेवाड़, पर विजय के साथ सीमावर्ती उत्तर पश्चिमी प्रान्त कंधार, काबुल, बलूचिस्तान पर आक्रमण करके भारत की सीमा को सुरक्षित कर लिया। अकबर के दरबार के नौ रत्नों में शेख फैजी, अबुलफजल, मुल्ला दो प्याजा, बीरबल, राजा टोडरमल, अब्दुल रहीम खानखाना, फैजी, मानसिंह, तानसेन जैसी साहित्यकार विद्वान संगीतज्ञ शोभा बढ़ाते थे। उनके दरबार में हिन्दू व मुसलमानों की संगीत कलाओं का अनूठा समन्वय था। तानसेन, रामदास, बैजू बावरा आदि हिन्दू संगीतज्ञों की मण्डली सम्मानजनक स्थान पाते थे।

1.2.2 समस्याएँ

अकबर को अपने पिता से काँटों का ताज प्राप्त हुआ था। भारत से बाहर मुगल–साम्राज्य के अन्तर्गत काबुल, बदख्शां और कन्धार थे। काबुल में अकबर का सौतेला भाई मिर्जा हकीम

मुनीम खाँ के संरक्षण में शासन कर रहा था। हुमायूँ की मृत्यु की सूचना पाते ही बदख्शां के सूबेदार मिर्जा सुलेमान ने अपने को केवल स्वतन्त्र ही घोषित नहीं किया अपितु वह मिर्जा हकीम और अकबर को अपने आधिपत्य में करने के लिए उत्सुक हो गया। अकबर जब पंजाब में ही था तो हेमू ने ग्वालियर से आगरा की ओर बढ़ना आरम्भ किया। आगरा के सूबेदार इस्कन्दर खाँ उजबेग ने हेमू की शक्तिशाली सेना से युद्ध करना बेकार समझा और वह भागकर दिल्ली चला गया। आगरा पर अधिकार करने के पश्चात् हेमू दिल्ली की ओर बढ़ा। वहाँ के सूबेदार तार्दीबेग ने किले से निकलकर उसका मुकाबला किया परन्तु उसकी पराजय हुई।

हेमू ने अपने तोपखाने को बिना किसी संरक्षण में आगे भेज दिया था जिस पर अलीकुल्ली खाँ के नेतृत्व में मुगलों के अग्रगामी दल ने अधिकार कर लिया। 05 नवम्बर, 1556 ई0 को पानीपत के मैदान में हेमू का मुगलों से मुकाबला हुआ। तोपखाना न होते हुए भी हेमू के आक्रमण से मुगल सेना में खलबली मच गयी। परन्तु उसी अवसर पर हेमू की आँख में एक तीर लगा और वह मूर्च्छित होकर अपने हाथी के हौदेमें गिर गया। उसके महावत ने उसे सुरक्षित स्थान पर ले जाने का प्रयत्न किया परन्तु वह असफल हुआ और हेमू पकड़ा गया। हेमू की सेना इधर–उधर भाग गयी अथवा मारी गयी। हेमू को अकबर के सामने ले जाया गया।

अकबर ने सम्भवतया अपनी तलवार उसकी गर्दन से छुआई उसके बाद बैरम खाँ ने उसका सिर काट दिया। जिस समय अकबर ने अपने शासन कार्य को आरम्भ किया उस समय उसकी सबसे बड़ी कठिनाई मुगल–साम्राज्य की रक्षा करना था। उसे समाप्त करने के पश्चात उसका लक्ष्य सम्पूर्ण भारत को एक राज्य और एक शासन के अन्तर्गत संगठित करने का था। उसके इस मार्ग में बहुत कठिनाइयाँ थी। वह स्वयं एक विदेशी तुर्क–मुसलमान था जबकि उसे भारत में अफगान, हिदू पर्शियन तुर्क आदि सभी से समन्वय स्थापित करना था। जिसमें अकबर ने सफलता प्राप्त की। उसने अपने जीवन–काल में सम्पूर्ण उत्तर भारत और दक्षिण के कुछ भाग पर अपना अधिकार कर लिया और अपने उत्तराधिकारियों के लिए सम्पूर्ण दक्षिण भारत की विजय का मार्ग प्रशस्त किया। परन्तु अकबर ने विजय मात्र से ही सन्तोष नहीं किया। उसने एक व्यवस्थित एवं सुदृढ़ शासन भी स्थापित किया। उसने अपने प्रदेशों पर शासन तथा राज्य की सुरक्षा तथा शक्ति के विस्तार के आधान पर ही नहीं किया बल्कि सम्पूर्ण राज्य की प्रगति और सम्पूर्ण प्रजा की भलाई के उद्देश्य से किया। अकबर का प्रान्तीय शासन अर्थ–व्यवस्था, लगान–व्यवस्था, कर–प्रणाली आदि सम्पूर्ण राज्य में समान थी। शाह अब्दुल माली ने जिसे हुमायूँ 'फर्जन्द' (पुत्र) पुकारता था, अकबर के राज्याभिषेक में सम्मिलित होने से इंकार कर दिया था। आर्थिक दृष्टि से अकबर की स्थिति बहुत दुर्बल थी। हुमायूँ ने खजाने में धन नहीं छोड़ा था अधीनस्थ प्रदेशों से तलवार के बूते पर ही लगान या अन्य कर वसूल किये जा सकते थे और दिल्ली एवं आगरा के निकट क्षेत्रों में भयंकर अकाल

पड़ रहा था। अकबर के लिए प्रथम संकट मुहम्मद आदिलशाह सूर ने खड़ा किया जिसके अधिकार में सम्भल से बिहार तक का क्षेत्र था। स्वयं आदिलशाह तो योग्य न था परन्तु उसका वजीर एवं सेनापति हेमू, निस्सन्देह योग्य था और आदिलशाह के आदेश से उसने आगरा और दिल्ली पर अधिकार करने हेतु आगे बढ़ना आरम्भ कर दिया था। अकबर अपने संरक्षक बैरम खाँ जो कशकुईलु तुर्क था, को अपना 'वकील' (वजीर) नियुक्त किया और उसे खान–ए–खाना, की उपाधि से विभूषित किया।

1.3 सारांश

मुगल सम्राटों में अकबर सबसे अधिक महान् शासक था। हजार वर्ष में जितने शासक हुए, उनमें वह महानतम था। शूरता और साहस में उसकी तुलना यूनान के सिकन्दर महान फांस के नेपोलियन बोनापार्ट से तो महत्वाकांक्षा में चन्द्रगुप्त मौर्य और शासन सुधार व जनकल्याण में सम्राट अशोक की तरह तो राजनीति में स्पेन के फिलिप द्वितीय और फ्रांस लुई चौदहवें से की जा सकती है। एक शासक के रूप में उनकी बड़ी सफलता यह थी कि उन्होंने भिन्न–भिन्न जातियों, राज्यों को एकसूत्र में बांध दिया था। वह एक साहसी सैनिक, वीर योद्धा, सफल सेनानायक, महान् योद्धा, प्रजावत्सल शासक, कलाप्रेमी, साहित्यानुरागी, उदार सहिष्णु, धार्मिक शासक थे। उनके शासन काल में प्रजा सुख और शान्ति से जीवन व्यतीत कर रही थी। अकबर का सौभाग्य था कि उन्हें बैरम खाँ जैसा योग्य, अनुभवी व ईमानदार संरक्षक मिला जिसके सहयोग से उन्होंने सर्वप्रथम अपने विरोधी शाह अबुल माली को बन्दी बनाया। 1560 के बाद उन्होंने मालवा पर विजय, अफगानों पर विजय जौनपुर के सामन्त खान जमां पर विजय मेड़ता पर विजय, गोंडवाना, चित्तौड़, रणथंभौर, कालिंजर मारवाड़, बीकानेर, गुजरात, बिहार, बंगाल, मेवाड़, पर विजय के साथ सीमावर्ती उत्तर पश्चीमी प्रान्त कंधार, काबुल, बलूचिस्तान पर आक्रमण करके भारत की सीमा को सुरक्षित कर लिया। अकबर के दरबार के नौ रत्नों में शेख फैजी, अबुलफजल, मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूंनी, बीरबल, राजा टोडरमल, अब्दुल रहीम खानखाना, मानसिंह, तानसेन जैसी साहित्यकार विद्वान संगीतज्ञ शोभा बढ़ाते थे। उनके दरबार में हिन्दू व मुसलमानों की संगीत कलाओं का अनूठा समन्वय था। तानसेन, रामदास, बैजू बावरा आदि हिन्दू संगीतज्ञों की मण्डली सम्मानजनक स्थान पाते थे। अकबर एक कुशल सैनिक और प्रतिभाशाली सेनापति था।

1.4 शब्दावली

'वकील' (वजीर)–वर्तमान प्रधानमंत्री के पद की तरह।

1.5 बोध प्रश्न

1. अकबर की उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

.....

2. अकबर की नीतियों पर टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

.....

3. इतिहास में अकबर के योगदान का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

1.6 सहायक ग्रन्थ

1. एल.पी. शर्मा, मध्यकालीन भारत का इतिहास

2. सतीश चन्द्र, मध्यकालीन भारत

इकाई –2

अकबर राजपूत संबंध, दक्षिण–नीति, धार्मिक–नीति, उत्तर–पश्चिम सीमान्त नीति

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2. अकबर राजपूत सम्बन्ध

1.3 दक्षिण–नीति

1.4 धार्मिक–नीति

1.5 उत्तर–पश्चिम सीमान्त नीति

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 बोध प्रश्न

1.9 सहायक ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेगे–

- अकबर की विभिन्न नीतियों के विषय में।
- अकबर की सुलह–ए–कुल की नीति की विशेषताओ के विषय में।

1.1 प्रस्तावना

अकबर की विभिन्न राजवंशों के प्रति धार्मिक सहिष्णुता की नीति रही है। राजपूतों के साथ एक विशेष प्रकार का संबंध स्थापित करने की नीति अकबर शासन काल में परिपक्वता को प्राप्त हुई, और यह नीति भारत में मुगल शासन की एक सबसे स्थायी विशेषता रही, यद्यपि बाद में इस संबंध में कुछ खास पैदा हो गई। अकबर के उदार धार्मिक विचारों और धार्मिक सहिष्णुता की नीति के निर्माण में परिस्थितयों ने सहायता दीं अकबर का पिता हुमायूँ उदार सुन्नी था, अकबर की माता शिया थी और अकबर का संरक्षक तरम खाँ भी शिया था। आरम्भ के काल में ही अकबर उदार सूफी सन्तों के सम्पर्क में आया था। अकबर का शिक्षक अब्दुल लतीफ धार्मिक विचारों में इतना उदार था कि फारस में उसे सुन्नी समझा जाता था और भारत में उसे शिया समझा जाता था। अकबर का भारतीय जीवन से सम्पर्क पंजाब से आरम्भ हुआ जहाँ गुरु नानक जैसे धर्म–प्रचारक हिन्दू और ईस्लाम धर्म की एकता में विश्वास करना

सिखा रहे थे। भक्ति आन्दोलन के अन्य विभिन्न धर्म–प्रचारकों भी सभी जातियों और धर्मो की समानता, धार्मिक–सहिष्णुता और ईश्वर–प्रेम का प्रचार कर रहे थे।

इस प्रकार अकबर का लालन–पालन और शिक्षा उदार वातावरण में हुई और जो व्यक्ति आरम्भ में उसके सम्पर्क में आये वह उसके विचारों को उदार बनाने वाले थे। अकबर का अपने युग का प्रभाव भी पड़ा। अकबर आरम्भ से ही अत्यधिक उदार ओर मानवीय गुणों से युक्त था और उसने अपनी युवावस्था में आध्यात्मिक ज्ञान की आवश्यकता को समझा था। अकबर ने अपने शासन के आरम्भ में 1562 ई० में दास–प्रथा को समाप्त कर दिया, 1563 ई० में तीर्थयात्रा कर को समाप्त कर दिया और 1564 ई० में 'जजिया' को समाप्त कर दिया। अकबर धार्मिक प्रवृत्ति का था और धर्म की सत्यता को जानने के लिए वह जिज्ञासु भी था। धर्म की सत्यता को जानने की उत्सुकता के कारण उसने 1575ई० में 'इबादतखाना' बनवाया, सभी धर्मो के विद्वानों को वहाँ आने का निमन्त्रण दिया और व्यक्तिगत रुप से ईसाई, जैन, पारसी, ओर हिन्दू विद्वानों के सम्पर्क में आया। अकबर ने समस्त धार्मिक मामलों को अपने हाथों में लेने के लिीए 1579 ई० में 'महजरनामा' या एक घोषणा जारी करवाया। जिसने धर्म के मामलों को सर्वोच्च बना दिया।

अकबर ने जिस धार्मिक नीति का पालन किया वह सभ धर्मो की समानता, सम्मान और सत्य के विश्वास पर आधारित थी। अकबर की इस धार्मिक नीति का क्रमिक विकास हुआ। उदारता से आरम्भ होकर इबादतखाने (पूजागृह) का निर्माण, दस्तावेज अथवा महजर तथाकथित अचूक आज्ञापत्र की घोषणा, विभन्न उदार नियमों का निर्माण जिनके द्वारा सभी धर्मो को समान सुविधा देने तथा समाज और उसके सदस्यों के नैतिक आचरणों में सुधार करने का प्रयत्न किया गया।

1.2 अकबर राजपूत–सम्बन्ध

अकबर की राजपूत नीति की दूसरे चरण की शरुआत 1572 में उसके गुजरात अभियान से मानी जा सकती हैं। आरंभ में मानसिंह को एक सुसज्जित सेना के साथ शेर खाँ फूलादी और उसके बेटों का पीछा करने की जिम्मेदारी सौंपी गई। अकबर की राजपूत नीति के विकास को तीन चरणों में विभक्त किया जा सकता। पहले चरण में, जिसकी समाप्ति 1572 में मानी जा सकती है, अधीनता स्वीकार करने वाले राजपूत राजाओं को वफादार मित्र माना जाता था। उनसे अपने राज्य के अंदर या उसके आसपास सेवा करने की अपेक्षा रखी जाती थी, लेकिन उससे बाहर नहीं। उदाहरण के लिए, ऊजबेक विद्रोह के दौरान अपने बेटे भगवान दास सहित राजा भारमल अकबर के साथ रहा, लेकिन उनके किसी लड़ाई में शामिल होने का कोई जिक्र नहीं मिलता, लेकिन कार्यवाइयों में सक्रिय रूप से भाग लिया। इसी तरह चित्तौड़ की घेराबंदी में मानसिंह से हिस्सा लेने को नहीं कहा गया यद्यपि वह शाहि शिविर में लगातार उपस्थित था। लेकिन राजस्थानके अंदर जब मुगल फौज ने 1562 में भेड़ता पर

घेरा डाला तब कछवाहों की एक टुकड़ी ने मुगलों के साथ होकर लड़ाई में भाग लिया था। उससे अगल साल जब मुगलों ने जोधपुर पर आक्रमण किया तब चंद्रसेन के बड़े भाई राम राय ने उनकी सक्रिय सहायता की थी। यह काई असाधारण बात नहीं थी, क्योंकि मालवा के साथ मेवाड़ के संघर्ष में बहुत से असंतुश्ट राजपूत सरदार मालवा के खलजी शासकों की ओर से लड़े थे। नाराज खिलजी सरदारों ने भी राणा के दरबार में शरण ली भी।

1.3 दक्षिण–नीति

अकबर दक्षिण–भारत को अपनी अधीनता में लाने के लिए उत्सुक था। 1591 ई० में उसने दक्षिण के खानदेश, बीजापुर, अहमदनगर और गोलकुण्डा राज्यों के शासकों के पास सन्देश भेजा कि वे उसकी अधीनता को स्वीकार कर लें। खानदेश का राज्य मुगलें की सीमा के सबसे अधिक निकट था। और एक प्रकार से दक्षिण–भारत का प्रवेश–द्वार था उसके राजा अलीखाँ ने मुगल–आधिपत्य स्वीकार कर लिया और वार्षिक कर देना स्वीकार किया। अकबर ने 1593 ई० में शहजादा मुराद और अब्दुर्रहीम खानखान को अहमदनगर पर आक्रमण करने के लिए भेजा। 1594 ई० में अहमदनगर के शासक बुरहान–उल मुल्क की मुत्यु हो जाने से राज्य में आन्तरिक संघर्ष आरम्भ हो गया था और राज्य के एक दल ने मुराद को अपनी सहायता के लिए आमन्त्रित भी किया। परन्तु मुगलों के वहाँ पहुँचने के पहले ही वजीर मिंदान मंजू ने विद्रोह को दबा दिय। स्वयं बीजापुर की सीमा पर जा पहुँच और किले की सुरक्षा का दयित्व चाँदबीबी को सौंप दिया। चाँदबीबी ने इब्राहीम के अल्पायु पुत्र बहादुरशाह का सुल्तान घोषित किया एवं उसकी संरक्षिका बन गयी। 1595 ई० में मुगलों ने अहमदनगर का घेरा डाला। कई महीनों तक चाँदबीबी ने बड़ी याग्यता से किले की रक्षा की। 1596 ई० में परस्परिक रसद की कमी और बीजापुर एवं गोलकुण्डा से अहमदनगर के लिए सहायता आ जाने की सम्भावना के कारण मुगलों ने सन्धि करना ठीक समझा। चाँदबीबी इसके लिए तैयार थी। एक सन्धि के द्वारा बुरहान–उल–मुल्क के पोते बहादुरशाह को अहमदनगर का शासक स्वीकार कर लिया गया। उसने अकबर की अधीनता को स्वीकार लिया तथा बरार का प्रदेश और अन्य बहुत सी भेंटें मुगलों को दीं परन्तु यह सन्धि अधिक समय न रह सकी। चाँदबीबी ने अपने को मुगल शासन से पृथक कर लिया और अन्य सरदारों ने सन्धि को ठुकराकर बरार को मुगलों से छीनने का प्रयत्न किया। अकबर ने खानखाना और मुराद के अहमदनगर पर पुनः आक्रमण करने के आदेश दिये परन्तु दोनों के मतभेदों को देखकर बाद में खानखाना के स्थान पर अबुल कजल को भेजा गया।

खानदेश का शसक राजा अली खाँ वफादारी से मुगलों की तरफ से अहमदनगर से युद्ध में लड़ता हुआ मारा गया था। उसके लड़के मीरन बहादुरशाह ने मुगल–अधिपत्य को मानने से इंकार कर दिया तथा अपने पिता से की गयी मुगलों की सन्धि को ठुकरा दिया। अहमदनगर से युद्ध चल रहा था कि खानदेश ने स्वतन्त्रता के रुख को अपना लिया। 1599 ई० में स्वयं अकबर ने खानदेश की राजधानी बुरहानपुर पर आक्रमण किया और उसे जीत लिया। परन्तु

मीरन बहादुरशाह ने अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध असीरगढ़ के किले में किया। अकबर ने असीरगढ़ का घेरा डाल दिया और उसके दरवाजे को 'सोने की चाभी' से खोला। अर्थात् अकबर ने दिल खोलकर खानदेश के अधिकारियों में धन बाँटा और उन्हें कपटपूर्वक अपनी ओर मिला लिया। 21 दिसम्बर, 1600 ई० को मीरन बहादुर ने अकबर के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया परन्तु अकबर ने अन्तिम रूप से इस दुर्ग को अपने कब्जे में 6 जनवरी, 1601 ई० को किया असीरग़ढ़ की विजय अकबर की अन्तिम विजय थी। मीरन बहादुर को ग्वालियर के किले में बन्दी बनाकर भेज दिया गया और 4000 अशर्फियाँ उसके वार्षिक निर्वाह के लिए निश्चित कर दी गयी।

1.4 उत्तर–पश्चिम सीमान्त नीति

उत्तर–पश्चिम की महान पर्वतमाला ने देश को उत्तर से बचाया और उत्तर में विदेशी आक्रमणों के खिलाफ प्राकृतिक बाधाओं के रूप में काम किया। लेकिन हिमालय की उत्तम–पश्चिमी पर्वतमाला, जिसे सुलेमान और हिंदुकुश कहा जाता है, बहुत अधिक नहीं है और खुर्रम, गोमल, बोलन और खैबर के रूप में बड़ी संख्या में दर्रे हैं, जिन्होंने आक्रमणकारियों की कई सीमाओं को भारत में झुंड में जाने दिया। फारसी, ग्रीक, कुषाण, हूण, तुर्क, अफगान और मुगल आक्रमणकारियों ने इन दर्रो से भारत में प्रवेश किया।

जब भी भारत के शासक उत्तर पश्चिम दिशाओं में अपनी रक्षा को मजबूत कर सकतें थें, वें सभी विदेशी आक्रमणकारियों से सुरक्षित रहे। आक्रमणकारियों को पंजाब और सिंध की उपजाऊ घाटियों तक पहुचने से रोकने के लिए, उत्तर–पश्चिम में एक मजबूत रक्षा प्रदान करना और काबुल से फैले क्षेत्र पर नियत्रण करना, गजनी से कंधार तक महत्वपूर्ण था। अकबर ने एक व्यवस्थित सीमावर्ती नीति का पालन किया। उसने मजबूत जनजातियो को भेजकर जंगली जनजातियो का दमन किया, जिन्हे अफगान जनजातियों, खासकर यूसुफजइयों से गम्भीर चुनौती का सामना करना पडा।

आदिवासी विद्रोह ने अकबर को अपने नियत्रण में सीमावर्ती प्रान्तो को लाने के लिए राजी कर लिया। उसने सिन्धु ब्लूचिस्तान, काश्मीर और कंधार पर विजय प्राप्त की। उन्होनें साम्राज्य को सुरक्षित किया और इस दिशा मे मुगल साम्राज्य के लिए क्षेत्रीय लाभ हुआ। पंजाब में मिर्जा हकीम अकबर के लिए समस्या खड़ी कर रहा था और उसने लाहौर पर हमला कर दिया।

सिन्ध मे उत्तर–पश्चिम में,अभी कुछ रिहायशी क्षेत्र स्वत्रंन्त्र थे।1590 में अकबर ने खान–ए–खाना को मुल्तान का गवर्नर नियुक्त किया और उसे बिजौलियों को हराने के लिए कहा, जो उस क्षेत्र की एक जनजाति थी, और उस पूरे प्रदेशीय क्षेत्र को जीतने का आग्रह किया। सबसे पहले थट्टा पर अधिकार किया और मुल्तान के सूबे में उसे सरकार के रुप मे स्थापित किया गया। आस–पास के क्षेत्रो में बिजौलियों के साथ झडपे होती रहीं। अंत मे

1595 मे पूरे उत्तर–पश्चिम क्षेत्रो पर मुगलों की सम्पूर्ण सर्वोच्चता स्थापित कर दी गयी।

1.6 सारांश

एक शासन–प्रबन्धक की दृष्टि से अकबर में मौलिकता एवं व्यावहारिकता दोनों ही थी। मुगल–व्यवस्था को स्थापित करने का श्रेय उसी को है। उसकी केन्द्रीय शासन व्यवस्था तथा बादशाह के पद और अधिकारियों एवं कर्तव्यों की व्याख्या, उसका प्रान्तीय शासन, उसकी लगान व्यवस्था उसकी मुद्रा–व्यवस्था उसकी सैनिक–शासन की मनसबदारी व्यवस्था ,आदि सभी को उसके समय में सफलता प्राप्त हुई और उसके उत्तराधिकारियो कें लिए आधार स्वरुप बनी। एक शासक और नीतिज्ञ के दृष्टि से अकबर की धार्मिक उदारता की नीति और राजपूत–नीति अद्वितीय थी। उन्होनें मुगल राज्य को एक नवीन आधार और शासन को एक नवीन दृष्टिकोण दिया। मुगल–साम्राज्य की शक्ति का विस्तार और उसका वैभव उसकी इन्ही नीतियों पर आधारित था। सांस्कृतिक दृष्टि से अकबर की नीति श्रेष्ठ थी। भाषा, साहित्य और कला की दृष्टि से जो प्रगति और समन्वय का दृष्टिकोण उसने अपनाया उससे मुगल साम्रज्य की बौद्विक एवं सांस्कृतिक प्रगति का आधार बना।

इस प्रकार, अकबर का चरित्र उदार और प्रभावशाली था तथा उसका व्यक्तित्व एक महान् व्यक्ति और एक महान बादशाह का व्यक्तित्व था। एक व्यक्ति, एक विजेता एक शासक, एक नितिज्ञ और एक बादशाह की दृष्टि से उसका जीवन सफल और प्रेरणा प्रदान करने वाला था। इसी कारण अकबर को 'महान' की पदवी से विभूषित किया गया है। इतिहासकार एडवर्ड्स और गैरेट ने लिखा है:"अकबर ने अपनी योग्यता अपनी जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सफलता प्राप्त की।" अकबर की महानता का एक मुख्य कारण यह है कि एक राष्ट्रीय सम्राट तभी स्वीकार किया जा सकता है जबकि उसकें शासन में उसकी सम्पूर्ण प्रजा के साथ शासन के सभी क्षेत्रो में समान व्यवहार किया जाय और राज्य की ओर से व्यक्ति और व्यक्ति में धर्म, जाति, वंश आदि के आधार पर कोई भेदभाव न कियाा जाय। अकबर ऐसा ही सम्राट था।उसने न केवल अपनी प्रजा की भलाई के लिए प्रयत्न किये थे बल्कि सभी के साथ समान व्यवहार किया था। वह भारत का पहला मुसलमाान शासक था जिसने अपनी सम्पूर्ण प्रजा के साथ समान व्यवहार किया और राष्ट्रीय हित को राज्य की नीति का आधार स्वीकार किया। अकबर भारत को राजनीतिक एकता प्रदान करने का प्रयत्न, उसकी समान शासन–व्यवस्था, समान अर्थ एवं लगान व्यवस्था, सभी को योग्यता के आधार पर राज्य की सेवाओं में उच्चतम स्थान प्राप्त करने की सुविधा और आदर तथा धार्मिक दृष्टि से एकता लाने का प्रयत्न, फारसी भाषा को राजभाषा बनाना और सभी भाषाओं की प्रगति में सहयोग, विभिन्न ललित–कलाओं की प्रगति तथा उनकी कला विधियों के समन्वयक का प्रयत्न, सांस्कृतिक एकता का प्रयत्न आदि सभी ऐसे कार्य थे जो राष्ट्रीय हित और प्रगति के

आधार पर किये गये थे। इस कारण अकबर को एक राष्ट्रीय सम्राट स्वीकार किया गया है।

1.4 शब्दावली

1.5 बोध प्रश्न

1.अकबर की नीतियों का वर्णन करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2.अकबर की सुलह–ए–कुल नीति पर टिप्पणी लिखें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

1.6 सहायक ग्रन्थ

1. एल.पी. शर्मा, मध्यकालीन भारत का इतिहास

2. सतीश चन्द्र, मध्यकालीन भारत

ईकाई– 3

जहाँगीरः राजपूत संबंध, दक्षिण एवं नूरजहाँ का प्रभाव

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 जहाँगीर राजपूत सम्बन्ध

1.3 **दक्षिण एवं नूरजहाँ का प्रभाव**

1.3 सारांश

1.4 शब्दावली

1.5 बोध प्रश्न

1.6 सहायक ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेगें–

- जहाँगीर के राजपूतो के साथ सम्बन्धों के विषय में।
- नूरजहाँ के विभिन्न क्षेत्रों में प्रभावों के विषय में।

1.1 प्रस्तावना

अकबर की तरह जहाँगीर को भी इस बात का एहसास था कि देश में सैन्य बल से नहीं बल्कि सद्भावना अर्जित करने सें स्थापित होता है। इसलिए उसनें पराजित अफगान सरदारों और उनके अनुंगामियों के साथ सद्भावना और सहानभूति कर व्यवहार किया। कुछ समय बाद दरबार में नजरबन्द बंगाल के बहुत से राजाओं और जमींदारों कों रिहा करके बंगाल लौट जाने दिया गया। यहाँ तक कि मूसा खाँ को भी रिहा कर दिया गया और उसकी जायदादें उसे वापस दे दी गई। इस प्रकार, काफी लंबे अर्से के बाद बंगााल में फिर से खुशहाली बहाल हुई। इस प्रकिया को अपनी परिणति पर ले जाते हुए अब अफगानों को भी बड़ी तादाद में मुगल सरदारों के समूह में स्थान दिया जाने लगा और उन्हें ऊँचे ओहदे मिलने लगे। जहाँगीर के अधीन सर्वप्रमुख अफगान सरदार खान–ए–जहाँ लोदी था, जिसे दक्कन की सैनिक कार्रवाइयों का प्रभारी बनाया गया। जहाँगीर उसकी बहुत कद्र करता था। सिंहासन पर अपनी स्थिति को मजबूत बनाने के साथ ही जहाँगीर को अकबर से विरासत मे मिले साम्राज्य को सुदृढ़ बनाने की समस्या से भी निपटना पड़ा। राजपूताना पर मुगल

आधिपत्य को परिपूर्ण करने तथा राजपूतों का सहयोग प्राप्त करने की दिशा में सहयोग प्रदान किया।

1.2 जहागीर राजपूत सम्बन्ध

जहाँगीर ने भी अपने पिता की भाँति राजपूत राजाओं के साथ वैवाहिक संबंधों की नीति को जारी रखा। लेकिन इन वैवाहिक संबंधों के उपरांत भी वह राजपूतों पर इतना विश्वास नहीं करता था, जितना अकबर करता था। क्योंकि इस समय शाही दरबार में मुसलमान, अकबर के समय की धर्म निरपेक्ष नीति के कारण अपनी खोई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे थे। अतः जहाँगीर ने राजपूतों के साथ वैवाहिक संबंध समानता के आधार पर स्थापित नहीं किये बल्कि वे मात्र राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये स्थापित किये गये थे।

आमेर के राजा मानसिंह ने अपनी पौत्री (जगतसिंह की लड़की) का विवाह जहाँगीर को खुश करने के लिये किया था क्योंकि अकबर के काल में जब उसने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया था, तब अकबर ने उसके पुत्र खुसरो को उत्तराधिकारी बनाना चाहा, उस समय मानसिंह ने खुसरों का समर्थन किया था। इस प्रकार जब 1662 ई० में जहाँगीर ने अपने पुत्र के साथ जोधपुर के शासक गजसिंह को भी भेजा था। इस प्रकार गजसिंह को परवेज के साथ रहने का अवसर मिला तथा परवेज का विश्वास प्राप्त करने के लिये गजसिंह ने अपनी पुत्री का विवाह परवेज से किया था। मानसिंह की संदिग्ध भूमिका, बीकानेर के राजा रायसिंह का विद्रोही रूख तथा बून्दी के राजा भोज द्वारा अपनी पौत्री का विवाह जहाँगीर से करने की अस्वीकृत देने के कारण जहाँगीर को राजपूतों पर संदेह उत्पन्न हो गया था।

इन सभी परिस्थितियों में जहाँगीर के दरबार में राजपूतों की स्थिति थोड़ी कमजोर पड़ गई थी यद्यपि उसने अपने पिता के सामान ही हिन्दुओं के उच्च सरकारी पदों पर नियुक्त करने की नीति जारी रखी, लेकिन हिन्दुओं की संख्या में भारी कमी आ गयी थी। अकबर के शासन काल में शाही मानसबदारों काल में राजपूत मनसबदारों की संख्या केवल 10.5ः रह गयी थी। इसी प्रकार आमेर के राजा मानसिंह के ज्येष्ठ पुत्र महासिंह, मानसिंह का वास्तविक उत्तराधिकारी था। लेकिन उत्तराधिकार संबंधी हिन्दू प्रथा के पूर्ण उपेक्षा कर जहाँगीर ने मानसिंह के एकमात्र जीवित पुत्र भावसिंह को आमेर का शासक बनाया तथा उसे चार हजारी का मनसब और मिर्जा राजा की उपाधि प्रदान की। इस प्रकार राजपूत राज्यों में उत्तराधिकार एकमात्र मुगल सम्राट को इन राज्यों में उत्तराधिकार एकमात्र मुगल सम्राट को इन राज्यों में अधिकाधिक हस्तेक्षप करने का अवसर मिलता गया जहाँगीर की यह भी नीति रही कि राजपूताने के किसी राज्य को शक्तिशाली नहीं होने दिया जाए। अतः कछवाहों की बढ़ती हुई शक्ति को नियंत्रित रखने के लिये आमेर की सीमा पर नये राठौर राज्य किशनगढ़ की स्थापना की। इसी प्रकार मेवाड़ की शक्ति को नियंत्रत रखने के लिये मालवा की सीमा

रतलाम नामक नये राज्य की स्थापना की गयी ऐसा प्रतीत होता है कि जहाँगीर राजपूतों के विरुद्ध लड़ा कर उनकी शक्ति क्षीण करना चाहता था।

1.3 दक्षिण एवं नूरजहाँ का प्रभाव

दक्षिण–भारत में जहाँगीर ने अपने पिता द्वारा आरम्भ किये गये कार्य को पूरा करने का प्रयत्न किया। अकबर के समय में खानदेश और अहमदनगर राज्य के कुछ भागों को जीत लिया गया था। परन्तु अहमदनगर का राज्य समाप्त नहीं हुआ था तथा बीजापुर और गोलकुण्डा पूर्णतया स्वतन्त्र थे। जहाँगीर के समय में उनको जीतने या अधिपत्य में लेने का कार्य पुनः आरम्भ किया गया। उस समय मुगलों की दक्षिण–भारत की विजय में सबसे बड़ी बाधा अहमदनगर के योग्य वजीर मलिक अम्बर ने प्रस्तुत की। मलिक अम्बर अपने समय के योग्यतम व्यक्तियों में से था। अबीसीनियन मलिक अम्बर को कासिम ख्वाजा नामक एक व्यक्ति ने बगदाद के बाजार से खरीदा था। उसने उसे अहमदनगर के मुर्तजा निजामशाह प्रथम के योग्य मन्त्री मीरक दबीर चंगेजखाँ को बेचा। जब बरार और खानदेश मुगलों के अधिकार में चले गये तब मलिक अम्बर ने बीजापुर राज्य में जाकर नौकरी कर ली।

परन्तु वह पुनः अहमदनगर वापस आ गया और उसने आनगखाँ की सेवा में 150 घुडसवारों के मनसबदार पर पद स्वीकार कर लिया। जब अकबर के समय में शहजादा दानियाल ने अहमदनगर–राज्य पर आक्रमण किया तब मलिक अम्बर और मलिक छज्जू को मुगलों पर आक्रमण करने तथा उन्हें तंग करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया था। उसने इस कार्य की पूर्ति सफलतापूर्वक की। उसने अपने सैनिकों के संख्या में वृद्धि की और अहमदनगर–राज्य के उन प्रदेशों को, जो मुगल–आधिपत्य में चले गये थे, मुगलों से छीनने का प्रयास किया। 1601–1602 ई० में मलिक अम्बर ने माण्डेर में सबसे पहली बार मुगलों का प्रत्यक्ष रुप से कड़ा मुकाबला किया जिसमें वह बुरी तरह से घायल हुआ परन्तु जीवित बच गया। जहाँगीर के बादशाह बनने और खुसरों के विद्रोह के समय कुछ वर्ष दक्षिण–भारत में शान्ति रही। मलिक अम्बर ने उस समय उपयोग विभन्न सुधारों तथ अहमदनगर–राज्य की शक्ति दृढ़ करने के लिए किया। उसने सैनिक और असैनिक दोनों प्रकार के सुधार किये। अहमदनगर–राज्य की स्थिति को विभिन्न प्रकार से सुदृढ़ करके मलिक अम्बर ने मुगलों की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने का प्रयत्न किया, और वह उसमें सफल हुआ। 1608 ई० में जहाँगीर ने अब्दुर्रहीम खानखाना को दस लाख रुपया और बारह हजार घुड़सवार अतिरिक्त रुप से दिये तथा दक्षिण भेजा। परन्तु उसे कोई सफलता न मिल सकी। इस कारण 1610 ई० में शाहजादा परवेज और आसफ खाँ को एक बड़ी सेना के साथ भेजा गया। परन्तु इससे पहले कि वह सेना दक्षिण में पहुँच पाती, मलिक अम्बर ने खानखाना को सन्धि करने तथा बुरहानपुर वापस जाने के लिए बाध्य कर दिया और अहमदनगर के किले पर अधिकार (1610 ई०) कर लिया। इसके पश्चात् मुगलों का ध्यान मेवाड़ की ओर लगा रहा। दक्षिण में खानखाना ने कूटनीति से मलिक अम्बर के कुछ वफादार सरदारों को अपनी ओर मिलाने में आवश्यक

सफलता प्राप्तकी परन्तु कोई महत्वपूर्ण युद्ध नहीं हुआ। 1615 ई० में मुगलों ने रोशनगाँव के निकट एक युद्ध में अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा की एक संयुक्त सेना को परास्त करने में पहली बड़ी सफलता पायी। मलिक अम्बर को भाग कर दौलताबाद के किले में शरण लेनी पड़ी।

परन्तु शहजादा परवेज और खानखाना के पारस्परिक मतभेदों के कारण इस विजय से कोई विशेष लाभ नहीं उठाया गया।

1617 ई० में अहमदनगर–राज्य और मुगलों में सन्धि हो गयी। बीजापुर के राजा ने खुर्रम को मूल्यवान उपहार दिये और बदले में जहाँगीर ने उसे फर्जन्द (पुत्र) की उपाधि दी। खानखाना को दक्षिण का सूबेदार रखा गया ओर शाहजादा की उपाधि दी गयी। परन्तु शाहजहाँ की दक्षिण की विजय केवल नाम की थी।

मलिक अम्बर ने इस सन्धि का पालन बहुत समय तक नहीं किया। उसने गोलकुण्डा और बीजापुर राज्यों से समझौता कर लिया और 1620 ई० में अहमदनगर के किले को घेर लिया। उसने बरार ओर आस–पास के प्रदेशों को जीत लिया। एक बार फिर शाहजहाँ को एक बड़ी सेना ओर धन देकर दक्षिण में भेजा गया। शाहजहाँ ने बुरहानपुर पहुँचकर आक्रमण की तैयारी की। अहमदनगर की नवीन राजधानी खिर्की पर अधिकार कर लिया। 1621, ई० में हुई सन्धि के अनुसार अहमद नगर–राज्य ने मुगलों से जीते हुए सम्पूर्ण प्रदेश वापस कर दिये। इस प्रकार 1621 ई० में दक्षिण युद्ध समाप्त हो गया।

जहाँगीर ने अकबर से उत्तराधिकार में धार्मिक उदारता की नीति प्राप्त की और उसने नीति का अनुसरण करते रहने का भरसक प्रयत्न किया। अपने पिता की ही तरह जहाँगीर ने भी गैर–मुस्लिम संप्रदाय के लोगों को सार्वजनिक पूजा–गृहों के निर्माण की छूट दी। जहाँगीर के शासन का आरंभ अच्छा हुआ, लेकिन आरंभ के वर्षो में उसकी स्थिति को खतरा बना रहा। स्वयं उसके पुत्र खुसरों ने उसको चुनौती दी। खुसरो को उसके मामा मानसिंह और ससुर मिर्जा अजीज कोका का भी समर्थन प्राप्त था। गद्दी पर बैठने के बाद जहाँगीर ने अपने पुत्र को क्षमा कर दिया लेकिन वह उसकी महत्वाकांक्षा के प्रति आशंकित था। इसलिए खुसरों को शाही मडल के सामने एक भवन में निगरानी में रखा गया। अप्रैल 1608 ई० में अकबर के मकबरे की यात्रा करने के बहाने खुसरो निगरानी से भागे निकला। जहाँगीर के शासनकाल में अनेक महत्वपूर्ण युद्ध हुए जिनके परिणामस्वरूप 1614 में मेवाड़ 1616 में अहमदनगर और 1620 में कांगड़ा पर विजय की।

जहाँगीर के जीवन और उसके इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण घटना नूरजहाँ से उसका विवाह था। नूरजहाँ के बचपन का नाम मेहरून्निसा था। उसका पिता गियासबेग पर्शिया का रहने वाला था। जिस समय जहाँगीर का विवाह हुआ था। उस समय जहाँगीर की आयु प्रायः 42 और नूरजहाँ की आयु 34 वर्ष थी। नूरजहाँ इस आयु में बहुत सुन्दर की दिखती थी। वह

शिक्षित और तीक्ष्ण बुद्धि की थी। कविता, संगीत और चित्रकला का उसे शौक था। फारसीं में उसने कविताएं लिखी थी। उसने एक पुस्तकालय बनवाया था जिसमें अनेक पुस्तकों का संग्रह किया गया था। वस्त्र श्रृंगार और आभूषणों का उसे शौक था और उनमें उसने नये–नये ढंग और तरीके निकाले थे। जहाँगीर ने अपने विवाह के अवसर पर उसने एक अत्यन्त सुन्दर पोशाक का निर्माण कराया था जिसे नूरमछली के नाम से पुकारा गया और जो वर्षो तक हरम की स्त्रियों में लोकप्रिय रही। शासन में उसे रुचि थी ओर उसमें समस्याओं का हल निकालने की कुशलता थी। वह धैर्यवान और साहसी थी। वह धार्मिक, सदाचारी और चरित्रवान थी। अपनी शराब पीने की मात्रा कम कर दी थी। उसका एक विशेष गुण करुणा और उदारता था। वह विद्वानों निर्धनों की सहायता करती थी तथा उसने सैकड़ो निर्धन लड़कियों के विवाह कराये थे। परन्तु नूरजहाँ के चरित्र की एक विशेषता उसकी महत्वाकांक्षा थी उसने शासन में हस्तक्षेप किया, अपने प्रभाव को बढ़ाया ओर सत्त को अपने हाथ में रखने का प्रयत्न किया। कहा गया है कि सम्पूर्ण मुगल–इतिहास में मुगल बंगमों का शासन में प्रभाव रहा। यह बात नूरजहाँ से अधिक किसी अन्य पर इतनी अधिक सत्यता से लागू नहीं होती। विवाह से समय से ही नूरजहाँ का प्रभाव बढ़ने लगा। वह जहाँगीर की प्रमुख बेगम बन गयी और उसके पिता, भाई और अन्य सम्बन्धियों के पदों में वृद्धि हुई। यह कहना तो अनुचित होगा कि उसके पिता एत्मादुद्दौला और भाई आसफखाँ को राज्य में श्रेष्ठ पर प्रदान किये जाने का कारण वही थी, क्योंकि वे स्वंय भी योग्य और वफादार सिद्ध हुए थे परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि नूरजहाँ उनकी उन्नति के लिए उत्तरदायी थी। शासन में उसका प्रभाव दिन–प्रतिदिन बढता गया। किसी भी स्त्री को भूमि समय तक दान नहीं की जाती थी जब तक नूरजहाँ की स्वीकृति न ले ली गयी हो। उसने जहाँगीर के साथ 'झरोखा–दर्शन' में भाग लेना आरम्भ कर दिया, बहुत से सिक्कें पर उसका नाम आने लगा और बादशाह के आदेश–पत्रों पर बादशाह के हस्ताक्षरों के अतिरिक्त बेगम नूरजहाँ का नाम लिखा जाने लगा। एक प्रकार से शासन–सत्ता बेगम नूरजहाँ के हाथों में चली गयी। राज्य सम्बन्धी कोई भी महत्वपूर्ण निर्णय बिना नूरजहाँ की स्वीकृति के सम्भव न रह गया। जहाँगीर प्रायः कहा करता था कि बादशाहत उसने बेगम नूरजहाँ को दे दी है। नूरजहाँ के प्रभुत्व–काल को दो भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम 1611 ई० से 1622 ई० तक का समय जबकि उसके माता–पिता जीवित थे और उसकी महत्वाकांक्षा को सीमित रखने में सफल हुये। अपने विवाह के बाद कुछ वर्षों में ही नूरजहाँ ने अपना एक दल बना लिया था जिसे 'नूरजहाँ गुट' के नाम से पुकारा गया। इस गुट में नूरजहाँ, उसका पिता एत्मातुद्दौला उसकी माँ अस्मत बेगम, उसका भाई आसफखाँ और शाहजादा खुर्रम थे। इनमें से प्रत्येक योग्य था और प्रत्येक राज्य में प्रतिष्ठित पद प्राप्त किये हुए था। शाहजादा खुर्रम जिसे बाद में 'शाहजहाँ' की पद्यवी से विभूषित किया गया, राज्य का उत्तराधिकारी समझा जाता था। और आसफ खाँ की लड़की अर्जुमन्दबानू बेगम से उसका विवाह हुआ था। इस प्रकार 1622 ई० तक नूरजहाँ ने इस दल की सहायता से अपनी प्रतिष्ठा और प्रभाव को स्थापित रखा।

इस प्रकार राजनीति में नूरजहाँ के हस्तक्षेप ने जहाँगीर के अन्तिम दिनों में दो विद्रोहों को जन्म दिया जिन्होंने साम्राज्य की शक्ति और सम्मान को कम किया। यदि नूरजहाँ शासन–शाक्ति को अपने हाथों में रखने के उद्देश्य से शहरयार को राजसिहासन दिलाने के लिए लालयित न होती तो, सम्भवतया, शाहजहाँ विद्रोह के लिए सम्बद्व न होता और महावत खाँ के विद्रोह का प्रश्न ही न रहता। इस प्रकार, नूरजहाँ का राजनीति में हस्तक्षेप हानिकारक हुआ।

1.3 सारांश

जहाँगीर की राजनीतिक उपलब्धियों और अपने पिता अकबर से विरासत में मिली। राज–व्यवस्था को सुदृढ करने मे उसकी भूमिका को सामान्यतः विकृत रुप में दिखते थे। अपने राजनीतिक लचीलेपन के बल पर उसने मेवाड़ के साथ संघर्ष को, जो दीर्घकाल से चल रहा था, समाप्त कर दिया। अन्य राजपूत राजाओं को कमोवेश कछवाहों वाला दर्जा और रुतवा देकर जहाँगीर ने मुगल राज्य–वयवस्था के आधार को अधिक व्यापक बनाया। उदाहरण के लिए, उसके शासन–काल के आरंभ में ही बीकानेर के राय शयान राय सिंह, जोधपुर के राजा सूर सिंह तथा मेवाड़ के राव करण सिंह को पांच–पाच हजार के मनसब दिए गए। राजा मानसिंह का जा दर्जा 7000/7000 का था, जहाँगीर ने अफगानों को भी जैसे कि खान–ए–जहाँ लोदी को ऊँचे पद देना आरंभ किया और शाही सेवा में प्रमुख मराठा सरदारों को दाखिल करने की शुरुआत की। जहाँगीर की विफलताएं 1621 से आरंभ हुई, जब उसका स्वास्थ्य गिरने लगा।

1.5 बोध प्रश्न

1.जहाँगीर की नीतियों का वर्णन करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2.दक्षिण भारत एवं राजनीति में नूरजहाँ के प्रभाव पर टिप्पणी लिखें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

1.6 सहायक ग्रन्थ

1. एल.पी. शर्मा, मध्यकालीन भारत का इतिहास

2. सतीश चन्द्र, मध्यकालीन भारत

3. हरिश्चन्द वर्मा, मध्यकालीन भारत

ईकाई 4

शहजहाँ राजपूत संम्बध,दक्षिण उतर पश्चिम. मध्य एशियाई नीती एवं स्वर्ण काल

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 शाहजहाँ राजपूत सम्बन्ध

4.3 **दक्षिण उत्तर पश्चिम मध्य एशियाई नीति एवं स्वर्ण काल**

4.4 सारांश

4.5 शब्दावली

4.6 बोध प्रश्न

4.7 सहायक ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेगे–

- शाहजहाँ की राजपूतो के साथ सम्बन्ध के विषय में।
- शाहजहाँ की विभिन्न नीतियों के विषय में।

4.1 प्रस्तावना

शाहजहाँ का काल मुगल–काल का स्वर्ण–काल था, इतिहासकार इसे मुगल–काल का ही नही वरन् मध्ययुगीन भारत के इतिहास का स्वर्ण काल मानते है और इसमे संदेह नही है मध्ययुगीन भारत के इतिहास के स्वर्ण–काल का स्थान उसें स्वतः प्राप्त हो जाता है।

शाहजहाँ के शासनकाल के आलोचकों में से अधिकाशं युरोपीय इतिहासकार है। उनकी विचार धारा के अनुसार 1627 से 1658 ई0 तक का प्रायः तीस वर्ष का शाहजहाँ का शासनकाल साधारणतया मुगल–शासन का स्वर्ण–काल कहलाता है। निस्सन्देह इस दृष्टि से वह सम्पन्नता का युग था। साहित्यिक दृष्टि से शाहजहाँ के समय में फारसी, संस्कृत, हिन्दी आदि सभी भाषाओं को संरक्षण प्राप्त हुआ और उनकी प्रगति हुई। गंगाधार और गंगा–लहरी 'के लेखक जगन्नाथ पण्डित शाहजहाँ के राजकवि थे। आचार्य सरस्वती और 'सुन्दर श्रृंगार, 'सिंहासन–बत्तीसी' तथा 'बारहमासा' के लेखक सुन्दरदास को राजकीय संरक्षण प्राप्त था। कवि चिन्तामणि पर भी शाहजहाँ की कृपा थी। शाहजहाँ को सभी ललित–कालाओं का शौक था चितकला में यद्यपि जहाँगीर की परम्परा को स्थापित रखा। शाहजहाँ सूरसेन और जगन्नाथ

जैसे गायकों को राजकीय संरक्षण प्रदान किया। परन्तु शाहजहाँ के समय में सबसे अधिक उन्नति वास्तु कला की हुई। इस प्रकार, शाहजहाँ का समय साम्राज्य–विस्तार, शान्ति, सम्पन्नता और सांस्कृतिक दृष्टि से मुगल–काल का स्वर्णकाल माना जा सकता है। परन्तु एक बात अवश्य स्वीकार करनी पड़ती है कि राज्य में जो सम्पन्नता आयी उसका लाभ बादशाह और जागीरदारों को ही प्राप्त हुआ था। बहुसंख्यक किसानों का इससे कोई लाभ नहीं हुआ था। क्योंकि शाहजहाँ के समय में लगान उत्पादन का आधा भाग होता था और राज्य की अधिकांश खालसा–भूमि (बादशाह की भूमि) को जागीरदारों की भूमि में परिवर्तित कर दिया गया था।

4.2 शाहजहाँ राजपूत सम्बन्ध

शाहजहाँ नें अधिकांश राजपुतों से मैत्री संबंध सीमित करने की नीति अपनाई। यद्यपि उसके शासन काल में मुगल राजपूत संबंधो में ऐसी बातें दिखाई पडती हैं जिनके आधार पर कुछ इतिहासकारों नें यह अनुमान लगाया है कि शाहजहाँ कें काल में मुगल राजपूत संबधों में सौहार्द तथा सामंजस्य की कमी आने की प्रक्रिया प्रारंभ हुईं। शाहजहाँ कें काल में राजपूत सैन्य दलों नें दक्कन. मध्य स्थित बल्ख तथा कंधार जैसे दूर–दराज प्रदेशों में अपनी विशिष्ट सेवाएँ दीं। उसने जोधपुर तथा अंबेर के दो प्रमुख राजवंशों को विशेष रुप से सम्मानित किया। जसवन्त सिंह जयसिंह 5000/5000 के अधिकारी थे। किंतु इस काल में राजपूत राजाओं को सूबेदार आदि के पद नहीं दिए गए। साथ ही वैवाहिक संबंध स्थापित करने की प्रक्रिया में भी फर्क आया। एक उदाहरण दोषारोपण का भी है। मेवाड़ के राणा जगत सिंह ने चित्तौड़ की संधि की अवहेलना करते हुए जब किले की प्राचीर की मरम्मत करवाई तो शाहजहाँ ने फौज भेजकर उसे फिर तुड़वा दिया। राणा को क्षमा तो कर दिया गया किंतु उसको देश के समीपवर्ती इलाकों से वंचित होना पड़ा।

शाहजहाँ ने बादशाह बनने पर जूझारसिंह द्वारा एकत्र किये गये करों की जाँच करने की आज्ञा दी जिससे शंकित होकर जूझारसिंह दरबार छोड़कर बुन्देहखण्ड भाग गया। 1628 ई० में जूझारसिंह पर आक्रमण किया गया। वह शाहजहाँ बुन्देलखण्ड की कठिन भौगोलिक परिस्थितियों और बुन्देला–शौर्य से परिचित था। इस कारण उसने प्रत्येक दिशा से बुन्देलखण्ड पर आक्रमण करने के आदेश दिया। स्वयं शाहजहाँ भी शिकार के बहाने ग्वालियर पहुँच गया जूझारसिंह ने शीघ्र ही अपनी दुबलता को समझ लिया। 1629 ई० के आरम्भ में उसने आत्मसमर्पण कर दिया। उसने एक हजार अशर्फिया, पन्द्रह लाख रूपया, चालीस हाथी और अपनी जागीर का कुछ भाग शाहजहाँ को दिया। शाहजहाँ ने उसे क्षमा कर दिया तथा उसे दक्षिण–भारत के युद्ध के लिए नियुक्त किया।

4.3 दक्षिण उत्तर पश्चिम मध्य एशियाई नीति एवं स्वर्ण काल

अकबर और जहाँगीर के समय में दक्षिण को जीतने के प्रयत्न किये गये थे। मुगलों

की साम्राज्यवादी नीति का वह एक भाग था। शाहजहाँ ने दस कार्य को करने का प्रयत्न किया। इसके अतिरिक्त दक्षिण–भारत के राज्यों में मुगलों के विद्रोहियों को शरण प्राप्त होती थी। शाहजहाँ इस स्थिति को समाप्त करने चाहता था। शाहजहाँ के गद्दी पर बैठने से पहले खानजहाँ ने बालाघाट का प्रदेश अहमदनगर में शरण प्राप्त की थी। उसी अवसर पर 1629 बुरहानपुर पहुँच गया। मुगलो ने आंशिक सफलता प्राप्त की। उसी अवसर पर निजामशाह ने मलिक अम्बर के अयोग्य पुत्र फतहखाँ को राज्य का वजीर बना दिया। फतहखाँ दुर्बल बुद्धि का स्वार्थी व्यक्ति था। कभी उसने मुगलों से बात की और कभी बीजापुर तथा गोलकुण्डा से मित्रता करने का प्रयत्न किया। शाहजहाँ फतहखाँ पर विश्वास नहीं करता था। उसने मुगल सेना को दौलताबाद पर आक्रमण करने के आदेश दिये। इससे डरकर फतहखाँ ने शाहजहाँ को बहुमूल्य उपहार भेजे तथा मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली। शाहजहाँ इससे सन्तुष्ट हो गया। उसका मन दक्षिण के युद्ध में नहीं लग रहा था क्योंकि 17 जनवरी, 1631 ई० को उसकी प्रिय पत्नी मुमताज महल की मृत्यु हो गयी थी। गोलकुण्ड के शासक शिया थे और मुगल बादशाह के आधिपत्य को उन्होंने स्पष्ट रूप से स्वीकार नहीं किया था। इस कारण शाहजहाँ के समय में उसे मुगल – आधिपत्य में लेने का प्रयत्न किया गया। 1626 ई० में मुहम्मद कुतुबशाह की मृत्यु हो गयी और 11 वर्ष की आयु का अब्दुल्ला कुतुबशाह शासक बना। उसके समय में गोलकुण्ड की स्थिति दुर्बल हो गयी क्योंकि राज्य के विभिन्न सरदारों में एकता न रहीं शाहजहाँ ने इस दुर्बलता का लाभ उठाया। 1631 ई० में मुगलों से सन्धि कर ली। बीजापुर ने सर्वदा मुगल बादशाह के विरूद्ध अहमदनगर को सहायता दी। इस कारण बीजापुर स्पष्ट रुप से दक्षिण में मुगल–प्रभाव को बढ़ने देने के विरोध में रहा था। जहाँगीर की मृत्यु से कुछ माह पहले सुल्तान इब्राहीम शाह की मृत्यु हो गयी और मुहम्मद आदिलशाह सुल्तान बना। 1631 ई० में शाहजहाँ ने आसफखाँ को बीजापुर आक्रमण के लिए भेजा परन्तु वह विफल रहा। शाहजहाँ ने आसफखाँ को वापस बुला लिया और महाबत खाँ को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया। महाबत खाँ ने दौलताबाद को जीतने और अहमदनगर के स्वतन्त्र अस्तित्व को समाप्त करने में सफलता पायी परन्तु वह किले को जीतने में असफल रहा। इसके बाद 1634 बीमारी के कारण महाबत खाँ की मृत्यु हो गयी। इसके पश्चात् शाहजहाँ का ध्यान जूझारसिंह के विद्रोह की तरफ गया और बीजापुर के विरूद्ध सफलता न मिल सकी। 1636 ई० में शाहजहाँ स्वयं दौलताबाद गया। बीजापुर की स्थिति उस समय दुर्बल थी। मुहम्मद आदिलशाह अपने सरदारों को नियन्त्रण में रखने में असमर्थ रहा था। ऐसी स्थिति में शाहजहाँ ने बीजापुर पर आक्रमण किया। शाहजहाँ के इस आक्रमण ने बीजापुर को भयभीत कर दिया और वह सन्धि के लिए तैयार हो गया। इस प्रकार 1636 ई० में बीजापुर ने मुगल–अधिपत्य स्वीकार कर लिया। उसी वर्ष गोलकुण्डा ने भी मुगलों से सन्धि कर ली और शाहजी ने मुगलों से सन्धि करके बीजापुर की सेवाएँ स्वीकार कर लीं। 1636 ई० का समय मुगलों की दक्षिण–नीति के सम्बन्धों में महत्वपूर्ण रहा।

इस प्रकार शाहजहाँ के समय में मुगलों की दक्षिण की नीति सफल रहीं। अहमदनगर के राज्य को पूर्णतया समाप्त कर दिया गया, बीजापुर तथा गोलकुण्डा से भूमि छीनी गयी, कुछ किले हस्तगत कर लिये गये, उनसे धन प्राप्त किया गया, उनकी शक्ति को दुर्बल किया गया और उन्हें स्पष्ट रूप से मुगलों की अधीनता में ले लिया गया।

इसी समय मध्य–एशिया पर तैमूर का अधिकार था उसके वंशज भी इस क्षेत्र पर अपना अधिकार बनाये रखना चाहते थे। शाहजहाँ के पूर्व मुगल सम्राट भारत की समस्याओं में ही इतने उलझे रहे कि उनका ध्यान इस ओर नही जा सका। शाहजहाँ के मन में उत्तर–दक्षिण में शानदार सफलता प्राप्त करने के बाद मध्य एशिया पर प्रभाव स्थापित करने की महत्वाकांक्षा उत्पन्न हुयी। इसी समय तैमूरी शासको की राजधानी समरकन्द पर इमामकुली का शासन था। इमामकुली के भाई नजर मुहम्मद ने उजबेकों को साथ लेकर दो बार काबुल पर आक्रमण किया था। अतः शाहजहाँ उसे दण्ड देना चाहता था परन्तु नजर मुहम्मद द्वारा क्षमा याचना कर लेने पर उनका विवाद समाप्त हो गया। 1639 ई० में शाहजहाँ ने मध्य एशिया की ओर ध्यान दिया। इस समय इस प्रदेश में आन्तरिक शासक बन गया था। 1645 ई० में ख्वारिज्म में विद्रोह हुआ। नजर मुहम्मद ने अपने पुत्र अब्दुल अजीज को बुखारा का स्वतंत्र शासक घोषित किया। शाहजहाँ ने काबुल के सूबेदार को उजबेकों पर आक्रमण करने का आदेश दिया। मुगलों ने कुछ प्रदेश जीता किन्तु सर्दियों में वह फिर उसके हाथ से निकल गया। अतः 1646 ई0 में शाहजहाँ ने शाहजाद मुराद को बल्ख पर आक्रमण करने के लिए भेजा नजर मुहम्मद भागकर फारस चला गया। शाहजहाँ ने विजय की खुशी में बल्ख में सिक्के चलवायें भारत की हरियाली में रहने वाले मुगल सरदार तथा सैनिकों का वहाँ मन नही लगा। अतः वे वापस आना चाहतें थे। उजबेकों की छापामारी युद्व प्रणाली के कारण उन्हें काबुल छोडना पडा। इस तरह शाहजहाँ की मध्य एशियाई नीति असफल हुई। इससे मुगल साम्राज्य को जनधन की भारी हानि हुई तथा सैनिक शक्ति को धक्का लगा।

4.4 सारांश

शाहजहाँ सुशिक्षित, सभ्य और मिलनसार था। उसने स्वयं अच्छी शिक्षा प्राप्त की थी और सभी विद्वानों का वह सम्मान करता था। फारसी और संस्कृत भाषा का प्रगति उसके संरक्षण में हुई। ललित–कलाओं का उसे शौक था। उसने स्थापत्य कला, चित्रकला और गायन–कला की उन्नति में सहयोग दिया व स्वयं अच्छा गायक था। बहु–विवाह करते हुए भी वह पत्नीव्रत था। मुमताज महल से उसका प्रेम इतिहास की कहानी बन गया। उसे अपने बच्चों में प्रेम थी। वह एक योग्य सैनिक और सेनापति था। अपने पिता के समय में उसने अनेक युद्धों में भाग लिया ओर सफलता प्राप्त की। अपनी बादशाहत के समय में भी वह अन्त तक युद्ध की योजनाएँ स्वयं बनाता रहा था।

एक साम्राज्य–निर्माता की दृष्टि से उसने अहमदनगर के राज्य को जीतकर राज्य–विस्तार

किया तथा बीजापुर गोलकुण्डा को मुगलों की अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। मध्य–एशिया और कन्धार की पुनः प्राप्ति के लिए प्रयत्न किये थे। शासन की दृष्टि से वह न्यायप्रिय और प्रजापालक था। उसके समय में व्यापार, उद्योग और कृषि उन्नतशील स्थिति में थे और राज्य धन–धान्य से पूर्ण था। उसे शासन–प्रबन्ध में रुचि थी ओर वह उसके लिए अत्यधिक परिश्रम करता था। उसने मनसबदारी प्रथा में सुधार किया। उसने अकाल और कठिनाइयों के अवसर पर प्रजा की सहायता की। धार्मिक दृष्टि से उसके विचार और उसके कार्य अकबर और जहाँगीर की तुलना में संकीर्ण और अनुदार सिद्ध हुए परन्तु तब भी हिन्दुओं और ईसाइयों के दैनिक धार्मिक जीवन में उसने कोई हस्तक्षेप नहीं किया।

शाहजहाँ हिन्दुओं के सभी उत्सवों एवं त्यौहारों में भाग लेता था और 'तुलादान' 'झरोखा–दर्शन' आदि जैसी हिन्दू–प्रथाएँ उसके समय में पहले शासकों की भाँति मानी जाती रही थी। उसने राजपूत सरदारों साथ सम्मान और विश्वास का व्यवहार किया जिसके कारण में मुगल–सामाज्य की सुरक्षा के लिए पहले की भाँति की तत्पर रहे। परन्तु शाहजहाँ के चरित्र और व्यक्तित्व का दूसरा पहलू भी है अनेक ऐसे अवसर आये ऐसी घटनाएँ हुई जब शाहजहाँ ने कठोरता और बर्बरता से कार्य किया। अपने पिता के विरुद्ध उसने विद्रोह किया तथा अपने सभी भाइयों और राज्य के सम्भावित उत्तराधिकारियों को क्रूरता से समाप्त करके उसने राज्य–सिंहासन प्राप्त किया था।

परन्तु यदि उसके जीवन से उन कार्यो को निकाल दिया जाय अथवा उनके महत्व को कम कर दिया जाय जो शाहजहाँ ने सिंहासन पर बैठने के अवसर पर किया अथवा कभी–कभी क्रोधवश अथवा परिस्थितियों वश किये, तो शाहजहाँ का व्यक्तित्व, चरित्र और इतिहास में स्थान पर्याप्त अच्छा स्वीकार किया जा सकता है। उसके चरित्र में अवगुण कम और गुण अधिक स्वीकार किये जा सकते हैं। प्रायः तीस वर्ष का शाहजहाँ का शासन–काल मुगल–साम्राज्य के वैभव और शक्ति की पराकाष्ठा का था।

4.5 शब्दावली

उजबेक–मध्य एशिया की जनजाति।

छापामार युद्व–छिपकर अचानक हमला करना।

4.6 बोध प्रश्न

1.जहाँगीर की नीतियों का वर्णन करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2.दक्षिण भारत एवं राजनीति में नूरजहां के प्रभाव पर टिप्पणी लिखें।

.....

.....

.....

1.6 सहायक ग्रन्थ

1. एल.पी. शर्मा, मध्यकालीन भारत का इतिहास

2. सतीश चन्द्र, मध्यकालीन भारत

3. हरिश्चन्द वर्मा, मध्यकालीन भारत

ईकाई – 5
मराठों का उत्कर्ष एवं शिवाजी

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 मराठों के उत्कर्ष क कारण

5.3 **शिवाजी की उपलब्धियाँ**

5.4 सारांश

5.5 शब्दावली

5.6 बोध प्रश्न

5.7 सहायक ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेगे–

- मराठों के इतिहास के विषय में।
- मराठो की उपलब्धियों के विषय में।

5.1 प्रस्तावना

वस्तुतः अंग्रेजों ने भारत का साम्राज्य मुगलों से नहीं बल्कि मराठों से प्राप्त किया। तत्कालीन मुगल बादशाहों की शक्ति अत्यन्त दुर्बल एवं सीमित हो गयी थी तथा 18वीं सदी में मराठे भारत की श्रेष्ठ शक्ति बन गये थे। इस कारण यह कहना अधिक उपयुक्त है कि भारत की राजसत्ता के लिए अंग्रेजो को वास्तव में हिन्दू–मराठों से संघर्ष करना पड़ा था। मराठा–शाक्ति का उत्कर्ष किसी एक व्यक्ति अथवा विशेष व्यक्ति–समूह का कार्य न था और न किसी विशेष समय में उत्पन्न हुई कुछ अस्थायी परिस्थितियों का ही परिणाम था। मराठा–शक्ति के उदय का आधार महाराष्ट्र के सम्पूर्ण निवासी थे जिन्होंने जाति, भाषा, धर्म, साहित्य और निवास–स्थान की एकता के आधार पर राष्ट्रीयता की भावना को जन्म दिया। और उस राष्ट्रीयता को संगठित करने के लिए एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की इच्छा की।

मराठों के उत्कर्ष का इतिहास मुसलमानों की राजनीतिक दुर्बलता का लाभ उठाकर हिन्दू राष्ट्रीयता के निर्माण का ऐसा इतिहास है जिसमें सम्पूर्ण महाराष्ट्र के निवासियों ने भाग लिया। यही वह शाक्ति थी जिसके आधार पर मराठा–नेताओं ने भारत में 'हिन्दू–पादशाही'

के निर्माण का स्वप्न देखा और दिल्ली के साम्राज्य को अपने हाथों में लेकर भारत की शक्तियों को एक शक्ति की अधीनता में लाने का प्रयत्न किया तथा यही वह शक्ति थी जिसके बल पर मराठे बड़े से बड़े संकट को बर्दाश्त कर सके। मराठा–शाक्ति के उत्कर्ष का इतिहास एक जन–समूह के उत्कर्ष का इतिहास है और एक ऐसे जागरण का इतिहास है जो सम्पूर्ण महाराष्ट्र की जनता में व्याप्त था।

5.2 मराठों के उत्कर्ष के कारण

मराठों के उत्थान का क्या कारण था, इस संबंध में विद्वानों ने अनेक व्याख्याएँ दी हैं। आरंभिक इतिहासकारों ने मराठा इतिहास को उस क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितयां, औरंगजेब की हिन्दू–विरोधी नीति और उनके परिणमस्वरूप हिंदूजागरण, भक्ति आंदोलन के मराठा संत कवियों का धार्मिक–आंदोलन, जिसने मराठों के गौरव को जमाने के साथ ही घृणित जाति प्रथा पर भी वार किया, और सर्वोपरि, शिवाजी के चमत्कारी व्यक्त्वि के परिप्रेक्ष्य में देखा है।

इस शक्ति के निर्माण में विभिन्न परिस्थितियों ने भाग लिया महाराष्ट्र की भौगोलिक परिस्थितियाँ मराठा–शाक्ति के उत्कर्ष में सहायक थी। महाराष्ट्र का अधिकांश भाग पठारी है जहाँ जीवन की सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को प्रकृति से कठोर संघर्ष करना पड़ता है। इससे वहाँ के निवासी परिश्रमी और साहसी बनते हैं। वहाँ आक्रमणकारी के लिये बहुत कठिनाइयाँ थीं सेना को लेकर चलना और उसके लिए रसद प्राप्त करना कठिन था, जबकि सुरक्षा के लिए वहाँ अनेक सुविधाएँ थी। स्थान–स्थान पर सरलता से पहाड़ी किले बनाये जा सकते थे जिनकी सुरक्षा करना सरल था परन्तु उनको जीतना कठिन था। गुरिल्ला युद्ध–पद्धति अथवा छापामार–नीति का प्रयोग वहाँ सरलता से सम्भव था। इसके अतिरिक्त, भारत के बीच में स्थित होने के कारण वहाँ के निवासियों के लिए उत्तर और दक्षिण दोनों दिशाओं में अपनी प्रगति करने की सुविधा थी। आर्थिक दृष्टि से महाराष्ट्र के निवासियों में अधिक आर्थिक असमानताएँ न थीं। व्यापारी वर्ग के अतिरिक्त वहाँ धनवान व्यक्ति अधिक न थे। इसका कारण आर्थिक शोषण करने वाले वर्ग का महाराष्ट्र में अभाव था। इससे महाराष्ट्र–निवासियों का चरित्र दृढ़ बना था, वे परिश्रमी और साहसी थे, उनमें समानता की भावना थी वे छोटे और बड़े की भावना से रहित थे तथा वे उस भोग–विलास से बचे रहे थे जिसके कारण उत्तर–भारत का समाज खोखला होता जा रहा था।

5.3 शिवाजी की उपलब्धियाँ

मराठा साम्राज्य की स्थापना छत्रपति शिवाजी ने 1674 ई० में किया था। इनका जन्म 20 अप्रैल, 1627 को पूना के उत्तर में स्थित जुन्नान नगर के निकट शिवनेर के दुर्ग में हुआ। इनकी इच्छा एक स्वतन्त्र राज्य स्थपित करने की थी। जो कि 1674 ई० में यानि कि 47 साल की उम्र में पूरी हुई। इस साम्राज्य में कुल पाँच राजाओं ने राज्य किया। जिसका राज्यकाल 1674 ई० से 1749 ई० तक था। छत्रपति शिवाजी के वंशों ने मराठा साम्राजय में

75 वर्षो तक अपना अधिकार बनाएं रखा था जिसमें शिवाजी, शम्भाजी, राजाराम, शिवाजी द्वितीय और ताराबाई तथा शाहु इत्यादि महान राजा शामिल थे। जिन्होंने इस साम्राज्य को बड़े स्तर तक ले गये थे। इस समय को भारत के इतिहास में हिन्दू सामाज्य के पुनः जागरण का समय भी माना जाता है। क्योंकि इससे पहले लगभग पूरे भारत में मुस्लिम शासको ने अपना अधिकार जमा के रखा था।

छत्रपति शिवाजी की मृत्यु के बाद इसका उत्तराधिकारी इसके पुत्र शम्भाजी बने थे। इसका शासनकाल 1680 ई० से 1689 ई० था। इन्होंने सिर्फ 9 साल तक ही इस सामाज्य में राज किया था। क्योंकि औरंगजेब ने 1689 ई० में शम्भाजी की हत्या कर दी थी। शम्भाजी के बारे में यह कहा जाता है, कि यह बहुत ही गुस्सा वाला तथा अभिमानी किस्म के राजा थे। शम्भाजी के हत्या के बाद इस विशाल सामाज्य का देखभाल करने की जिम्मेदारी इसके भाई राजाराम के सिर पर थी। इसलिए राजाराम ने 1689 ई० में अपना राज्याभिषेक रायगढ़ के किले में करवाया तथा खुद को शाहू घोषित कर दिया। और कभी भी राजगद्दी पर नहीं बैठा। इन्होंने मराठा साम्राज्य के लोगों को जागीर (धन) दिया। इस कारण से मराठा साम्राज्य को अधिक मजबूती मिली था।

राजाराम की मृत्यु 1700 ई० में हो गयी थी। इसके बाद पत्नी ताराबाई ने अपने पुत्र शिवाजी द्वितीय को सिंहासन पर बैठा दिया। जो मात्र 4 साल का एक बच्चा था तथा मुगलों से युद्ध जारी रखा। ताराबाई ने अपने इस साहस के दम पर रायगढ़, सतारा तथा सिंहगढ़ किलों को मुगलों के पास से फिर से जीत लिये थे। 1700 ई० से 1707 ई० तक सिर्फ 7 साल ही शासन किया था। इसके बाद 1707 ई० से 1749 ई० तक शाहू ने मराठा साम्राज्य में राज्य किया। कुछ इतिहासकारों के अनुसार मराठों में उत्थान का कारण शिवाजी जैसे योग्य कूटनीतिज्ञ कुशल सैनिक और महान नेता था। शिवाजी के उज्जवल चरित्र और महान व्यक्तित्व का निर्माण उसकी माता जीजाबाई के कारण हुआ। उसकी शिक्षाओं और परामर्श के कारण शिवाजी मराठों को संगठित कर सका।

शिवाजी के चरित्र एवं व्यक्तित्व ने भी एक सशक्त मराठा आंदोलन खड़ा करने में महत्वपूर्ण योगदान किया। शिवाजी शाहजी भोंसले और जीजाबाई के पुत्र थे। शाहजी भोंसले स्वयं एक चतुर कूटनीतिज्ञ एवं सामंत थे। जीजाबाई निबांलकरों की पुत्री थी ओर अत्यंत धर्मिक प्रकृति की स्त्री थी। शिवाजी अपने पिता के प्रिय पुत्र नहीं थे। महाराष्ट्र के भक्ति आंदोलन के संतों, विशेष रूप से दादाजी कोंडदेव के प्रभाव ने उन्हें अत्यंत धार्मिक एक अनुशासित बना दिया था। उनमें नेतृत्व देने कार्य करने और राज्य का दर्जा प्राप्त करने के लक्ष्य से मराठा समाज के विभिन्न तत्वों को एक करने की क्षमता थी। अन्य मराठा प्रमुखों, दक्षिणी सल्तनतों और मुगलों के विरुद्ध सेना सफलताओं ने शिवाजी को उनके जीवन काल में ही गाथा बना दिया था। ज्ञानेश्वर हेमाद्रि और चक्राधर से लेकर एकनाथ, तुकाराम ओर रामदास तक, महाराष्ट्र के सभी संतों और दार्शनिकों ने भक्ति के सिद्धांत एवं इस बात पर बल दिया कि

सभी मनुष्य ईश्वर की संतान हैं ओर इस कारण समान हैं। उनके जाति प्रथा का विरोध करने के कारण मराठा और कुन्बी जैसी निम्न जाति के लोग उनके अनुयायी बन गये।

ये संत स्थानीय मराठी भाषा में ही उपदेश देते थे जिससे इस भाषा को इच्छित गौरव प्राप्त हुआ और इसे साहित्य भी मिला। एक विशिष्ट मराठा पहचान उभर कर सामने आई जिसने यहाँ के लोगों को एकता एवं लक्ष्य की भावना से प्रेरित किया।

सामाजिक दृष्टि से महाराष्ट्र के निवासियों में आर्थिक असमानताएँ न थीं। व्यापारी वर्ग के अतिरिक्त वहाँ धनवान व्यक्ति अधिक न थे। 15वी और 16वी सदी के धर्म–सुधार और भक्ति–आन्दोलन ने सामाजिक ओर धार्मिक सुधार किये थे तथा जातीय समानता को शक्तिशाली बनाया था। महाराष्ट्र में राजनीतिक चेतना से पहले सामाजिक और धार्मिक चेतना उत्पन्न हो गयी थी। इसके अतिरिक्त, दक्षिण–भारत का वह धार्मिक ओर सामाजिक आन्दोलन किसी एक वर्ग का आन्दोलन न था बल्कि वह धार्मिक और सामाजिक आन्दोलन किसी एक वर्ग का आन्दोलन न था बल्कि वह जनसाधारण का आन्दोलन था। इस आन्दोलन का नेतृत्व उन व्यक्तियों ने किया था जिनमें से अधिकांश समाज के निम्न वर्ग में से थे। तुकाराम, रामदास, वामन पण्डित और एक नाथ जैसे सन्त और दार्शनिक इसकी आत्मा थे। यह आन्दोलन ब्राह्मणों की श्रेष्ठता, ऊँच–नीच की भावना, जाति–व्यवस्था और कर्मकाण्ड के विरुद्ध था। इसने विश्वास, आस्था और भक्ति के द्वारा सभी को ईश्वर को प्राप्त करने का मार्ग बताया। इस आन्दोलन ने धार्मिक और सामाजिक एकता तथा सरलता का मार्ग प्रशस्त किया, महाराष्ट्र के समाज और जन–जीवन को संगठित किया तथा उसे एकता की वह भावना प्रदान की जिससे राष्ट्रीय भावन का निर्माण होता है।

इतिहासकार रानाडे ने महाराष्ट्र में उत्पन्न राजनीतिक उथल–पुथल का एक मुख्य कारण वहाँ के धार्मिक–आन्दोलन को बताया है और इसमें कोई सन्देह नहीं कि महाराष्ट्र के विभन्न सन्तों ने मराठों की राष्ट्रीय भावना का पोषण किया था। विभिन्न सन्तों के भजनो, उपदेशों आदि ने अशिक्षित मराठों की राष्ट्रीय भावना का पोषण किया था। और उनमें अपने धर्म और समाज की रक्षा की भावना को जन्म दिया। भाषा की दृष्टि से मराठी भाषा बहुत सरल है। और व्यावहारिक थी। मराठी भाषा जनसाधारण की भाषा थी। साधारण भाषा के प्रयोग से महाराष्ट्र के निवासियों में एकता और समानता थी।

5.4 सारांश

इतिहासकार सरदेसाई ने शिवाजी के बारे में लिखा है : ''निस्सन्देह, शिवाजी का व्यक्तित्व अपने ही युग का नहीं बल्कि सम्पूर्ण आधुनिक युग का भी असाधारण व्यक्तित्व है। अन्धकार के बीच में एक ऐसे नक्षत्र के समान चमकते हैं जो अपने समय से बहुत आगे थे।'' शिवाजी का चरित्र और व्यक्तित्व मराठा इतिहासकार के इस कथन की पुष्टि करता है। शिवाजी का चरित्र प्रत्येक प्रकार से आदर्श माना जा सकता है। वह एक अच्छ पुत्र, वफादार

मित्र, पत्नी प्रिय पति और प्रिय पिता थे। वह अपनी माता का अत्यधिक सम्मान करते थे। उनके चरित्र के विकास में उनकी माता का बहुत बड़ा हाथ रहा। दयालुता, सहिष्णुता, सदव्यवहार साहस, शौर्य, दृढ़–निश्चय, पवित्र विचार आदि सभी गुण उनमें थे अपने समय की परम्परा के अनुसार उन्होंने कई विवाह किये थे परन्तु अपनी सभी पत्नियों के प्रति उनका व्यवहार प्रेम का था। शिवाजी ने शिक्षा प्राप्त न की थी परन्तु अपने अनुभव से उन्होंने अच्छा व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त किया था। वह कुशल नीतिज्ञ, मनुष्यों के पारखी और परिस्थितियों को समझने वाले थे। शिवाजी एक अच्छे हिन्दू और दुर्गा–भवानी के पूजक थे। धर्म, धार्मिक ग्रन्थ और कहानियाँ उनके जीवन की प्रेरणा थे उनकी धार्मिक प्रवृत्ति एक पहाड़ी झरने की भाँति स्वच्छ जल को अविरल गति से बहाने वाली थी जिसमें धर्मान्धता की गन्दगी न थी। उन्होंने सभी धर्मो का सम्मान किया और उनके साथ समान व्यवहार किया। महाराष्ट्र के तत्कालीन धार्मिक आन्दोलनों और सन्तों से वह प्रभावित हुए थे ओर महाराष्ट्र का धार्मिक पुनर्जागरण इस बात पर आधारित था कि शक्ति के आधार पर लायी गयी मुसलमानी धार्मिक असहिष्णुता को सहन न किया जाय। शिवाजी के व्यक्तित्व पर धार्मिक पुनर्जागरण की उस भावना का प्रभाव स्पष्ट था।

शिवाजी एक कुशल ओर साहसी सैनिक थे। अनेक युद्धो में उन्होंने अपने जीवन को संकट में डाला था। अफजल खाँ से भेंट करना, शाइस्ताखाँ पर अचानक उसके शहर और निवास–स्थान में प्रवेश करके आक्रमण करना औरंगजेब से आगरा मिलने जाना उनके जीवन की ऐसी घटनाएं हैं जो सिद्ध करती है कि शिवाजी अपने जीवन को खतरे में डालने से कभी नहीं झिझके। शिवाजी एक योग्य सेनापति थे। अपने देश की भौगोलिक परिस्थितयों के अनुकूल उन्होंने गुरिल्ला युद्ध–पद्धति का प्रयोग किया और सुरक्षा के लिए अनेक दुर्गों का निर्माण कराया। शिवाजी किसी भी प्रकार की मादक वस्तुओं का प्रयोग नहीं करतें थे ओर स्त्रियों के प्रति उनका व्यवहार आदरपूर्ण था। इस प्रकार, शिवाजी सभी मानवीय गुणों से पूर्ण थे और अपने समय की नैतिकता से हीं आगे थे।

5.6 बोध प्रश्न

1.भारतीय इतिहास में मराठों के योगदान का वर्णन करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2.शिवाजी की उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5.7 सहायक ग्रन्थ

1. एल.पी. शर्मा, मध्यकालीन भारत का इतिहास

2. सतीश चन्द्र, मध्यकालीन भारत

3. हरिश्चन्द वर्मा, मध्यकालीन भारत

UGHY-103

भारतीय इतिहास

1556–1857 ई0 तक

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

खण्ड – 2

मुगल साम्राज्य का ह्रास

इकाई – 1 39

शाहजहाँ की मृत्यु के उपरान्त उत्तराधिकार का युद्ध

इकाई – 2 47

औरंगजेब : राजपूत संबंध एवं धार्मिक नीति

इकाई – 3 58

औरंगजेब : दक्षिण नीति एवं विफलता के कारण

इकाई – 4 69

उत्तरवर्ती मुगल शासक : नादिरशाह का आक्रमण

इकाई – 5 79

मुगल साम्राज्य के पतन के कारण

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय उत्तर प्रदेश
प्रयागराज

परामर्श समिति **UGHY-103**

प्रो0 सीमा सिंह — **कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज**

कर्नल विनय कुमार — **कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज**

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार — आचार्य इतिहास एवं प्रभारी निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी — आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो0 संजय श्रीवास्तव — आचार्य, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशाखा विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

प्रो0 संतोषा कुमार (ब्लॉक–1) — आचार्य, इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ. नम्रता प्रसाद (ब्लॉक–2) — एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास सी.एम.पी.पी.जी. कॉलेज, प्रयागराज

डॉ. (कुमारी) पंकज शर्मा (ब्लॉक–3 एवं 6) — सहायक आचार्य, इतिहास नानकदेव संस्कृत पी.जी.कॉलेज,मेरठ

डॉ. संतोष कुमार चतुर्वेदी (ब्लॉक–4) — आचार्य, इतिहास महामति प्राणनाथ पी.जी.कॉलेज,मऊ, चित्रकूट

डॉ0 तनवोर हुसैन (ब्लॉक–5) — सहायक आचार्य, इतिहास, जी.एफ.पी.जी. कॉलेज,शाहजहाँपुर

सम्पादक

प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी (ब्लॉक–1,3,4,5,6) — आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो. अरुणा सिन्हा (ब्लॉक–2) — आचार्य, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-ShareAlike 4.0 International License.

ISBN : 978-93-94487-91-8

इकाई–1

शाहजहाँ की मृत्यु के उपरान्त उत्तराधिकार का युद्ध

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 उत्तराधिकार युद्ध के कारण

1.3 उत्तराधिकार के प्रमुख दावेदार व युद्ध के तत्कालिक कारण

1.4 आरंभिक चरण

1.4.1 शुजा की पराजय

1.4.2 धरमत का युद्ध

1.4.3 सामूगढ़ का युद्ध

1.4.4 औरंगजेब द्वारा आगरा पर अधिकार

1.4.5 मुराद शुजा और दारा का अन्त

1.5 औरंगजेब की सफलता के कारण

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.8 सहायक ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को अध्ययन करने के बाद आप जान सकेंगे किः–

- उत्तराधिकार युद्ध के प्रमुख कारण क्या थे।
- उत्तराधिकार युद्ध के दावेदार कौन–कौन थे।
- उत्तराधिकार के प्रमुख युद्धों का क्या प्रभाव पड़ा।
- उत्तराधिकार के युद्धों से कौन लाभान्वित हुआ।
- उत्तराधिकार के युद्धों के दावेदारों की असफलता के क्या कारण थे।
- औरंगजेब की सफलताओं के क्या कारण थे।

1.1 प्रस्तावना

शाहजहाँ के शासनकाल के अन्तिम वर्श, उसके लड़कों के बीच उत्तराधिकार के संघर्श के बादलों से आच्छन्न रहे। तैमूरियों में उत्तराधिकार की कोई निश्चित परम्परा नहीं थी। कुछ मुसलमान राजनीतिक विचारकों ने सम्राट के अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति के अधिकार की मान्यता दी थी। मुगलों में उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम नहीं था। भारत में मुगल राजवंश की स्थापना के साथ ही उत्तराधिकार की समस्या बार–बार उठी। निश्चित नियम के आभाव में तख्त का फैसला बहुधा तलवार के बल पर ही होता था, पिता–पुत्र और भाई–भाई से युद्ध होते थे। इस इकाई में आप शाहजहाँ के शासन के उपरान्त होने वाले उत्तराधिकार के युद्धों और उसके परिणाम की जानकारी प्राप्त करेंगे। अपने पुत्रों के बीच संघर्श की आशंका को देखते हुए अपने अन्तिम समय में शाहजहाँ ने दारा को अपना उत्तराधिकारी (वली अहद) घोशित किया। उसके तीनों पुत्रों ने भी दिल्ली सल्तनत के लिए अपना दावा पेश करने की कोशिश की।

1.2 उत्तराधिकार युद्ध के कारण

उत्तराधिकार युद्ध के लिए उत्तरदायी तीन अति महत्वपूर्ण कारण थे–

(A) दारा के प्रति शाहजहाँ का पक्षपाती दृश्टिकोण।

(B) दारा और औरंगजेब के मध्य पुरानी प्रतिद्वद्विता।

(C) दारा और औरंगजेब मुगल दरबार के दो खेमों के प्रमुख थे– दारा उदारवादी तत्वों का तथा औरंगजेब रूढ़ीवादी तत्वों का प्रतिनिध था।

(D) प्रतिद्वंदी शाहजादों के चरित्र की भिन्नता ने भी युद्ध की गति पर व्यापक प्रभाव डाला।

1.3 उत्तराधिकार के प्रमुख दावेदार व युद्ध के तत्कालिक कारण

शाहजहाँ के चार पुत्र थे जिनका जन्म मुमताज महल से हुआ था। इनमें सबसे बड़ा दारा शिकोह था जिसकी आयु 43 वर्श की थी, अपने पिता का सबसे अधिक प्रिय था। उसे शाहजहाँ ने 'शाह इकबाल' की उपाधि प्रदान की थी वह विद्वान उदार एवं दयालु था। धार्मिक सहिश्णुता की नीति अपनाकर उसने अच्छी ख्याति अर्जित कर ली थी। वह पंजाब का सूबेदार एवं दिल्ली का प्रशासक था, परंतु वह सदैव पिता के साथ राजधानी में रहता था। उसे प्रशासनिक अनुभव तो था लेकिन सामरिक अनुभव न था। शाहजहाँ का दूसरा पुत्र शाहशुजा (41 वर्श) बंगाल का शासक था वह साहसी और वीर परंतु आलसी अयोग्य विलासप्रिय एवं अकर्मण्य था। औरंगजेब (39 वर्श) शाहजहाँ का तीसरा पुत्र था जो चालाक, महत्वाकांक्षी एवं कूटनीतिज्ञ था। यद्यपि धार्मिक मामलों में औरंगजेब असहिश्णु प्रवृत्ति का कट्टर सुन्नी मुसलमान था परंतु वह एक अच्छा संगठनकर्ता और कुशल सेनाध्यक्ष था। शाहजहाँ ने उसे

दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया था। शाहजहाँ का सबसे छोटा पुत्र मुराद (37 वर्श) गुजरात का प्रशासक था इसमें प्रशासनिक क्षमता और दूरदर्शिता का पूर्ण अभाव था। वह भावुक, आराम तलब और जल्दबाज था। इन चारों में वास्तविक संघर्श दारा और औरंगजेब के बीच ही हुआ। शाहजहाँ की तीनों पुत्रियों जहाँआरा, रोशन आरा और गौहरआरा ने भी अप्रत्यक्ष रूप से उत्तराधिकार के संघर्श में विभिन्न पक्षों का साथ दिया। जहाँआरा ने दारा का रोशन आरा ने औरंगजेब का तथा गौहरआरा ने मुराद का पक्ष लिया।

दिल्ली में सिंतंबर 1657 ई0 में शाहजहाँ अचानक गंभीर रूप से बीमार पड़ गया तथा कुछ समय के लिए तो लोगों को उसके जीवन की आशा ही नहीं रही थी। शाहजहाँ की बीमारी की खबर पूरे साम्राज्य में फैल गयी साथ ही यह अफवाह भी फैल गयी कि सम्राट की मृत्यु हो गई है और इस सूचना को दारा ने दबाकर रखा है। यद्यपि शाहजहाँ धीरे–धीरे स्वस्थ हो रहा था लेकिन आगरा से समाचारों के बाहर जाने पर प्रतिबंध लगा देने से शाहजहाँ की मृत्यु की अफवाह को ही बल मिला। राजधानी से दूर शाहजहाँ के तीनों पुत्रों पर भी अफवाहों की प्रतिक्रिया हुई और उन्होंने दारा के विरूद्ध युद्ध की तैयारियां शुरू कर दीं। अपने पुत्रों के बीच संघर्श को साम्राज्य के लिए धातक मानते हुए और अपने अन्तिम समय को नजदीक देख शाहजहाँ ने दारा को अपना उत्तराधिकारी (वली अहद) नियुक्त किया और उसका मनसब बढ़ा दिया। उसके बैठने का स्थान सिंहासन के बगल में नियुक्त किया तथा सभी मनसबदारों से दारा को अगले सम्राट के रूप में स्वीकार करने का आदेश भी दिया। तत्कालिक इन घटनाओं की सूचना ने, उसके पुत्रों के बीच, जलती अग्नि में घी के समान कार्य किया। सर्वप्रथम मुराद ने अपने मन्त्री अलीनिकी को कत्ल कर गुजरात में अपने आपको सम्राट घोशित कर अपने नाम के सिक्के ढलवाये। शुजा ने बंगाल में अपने आपको सम्राट घोशित कर अपने नाम के सिक्के ढलवाये और खुतबा पढ़वाया। शुजा बंगाल से अपनी सेना लेकर आगरा की ओर बढ़ा। मुराद भी आक्रमण की तैयारी करने लगा उसने सूरत के बंदरगाह को लूट लिया जो दारा की समर्थक जहाँआरा की जागीर थी। औरंगजेब ने कूटनीति से काम लिया और बिना उत्तेजित हुए ही उसने घोशणा की कि उसका आगरा आने का उद्देश्य दारा जैसे धर्मभ्रश्ट के हाथों से बादशाह को मुक्त कर सम्राट और धर्म की रक्षा करना है। इस तरह उसको कट्टर मुसलमानों का समर्थन प्राप्त हुआ। कूटनीति का प्रयोग करते हुए उसने शुजा और मुराद को भी जल्दबाजी के लिए फटकारा और यह दर्शाया कि उसका उद्देश्य सिर्फ दारा के प्रभाव से सम्राट को मुक्त करना था। मुराद के साथ उसने मालवा में एक गुप्त संधि भी कर ली जिसके अनुसार दारा का प्रभाव समाप्त करने के पश्चात औरंगजेब मुराद को पंजाब, अफगानिस्तान, काश्मीर एवं सिंध का देगा, जो वहाँ बादशाह का झंडा गाढ़ेगा, सिक्के चलाएगा, बादशाह के रूप में अपना नाम घोशित करेगा तथा लूट के माल एक तिहाई मुराद बख्श को तथा दो तिहाई औरंगजेब को मिलेगा। मुराद उसकी बातों में आ गया और इस प्रकार औरंगजेब ने चतुराई पूर्वक अपने सिंहासन प्राप्त करने की अभिलाशा

को छुपाया। अपनी बहन रोशनआरा तथा अपने गुप्त दूतों के द्वारा आगरा (शाही दरबार) की सभी सूचनाएं प्राप्त करता रहा। उसके कूच का समाचार भी उत्तर भारत नहीं पहुंच सका। उसके इन सब कार्यों में मीरजुमला ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। दोनों भाइयों ने अपने–अपने राज्यों से चलकर सम्मिलित रूप से आगरा पर आक्रमण की योजना बनायी।

1.4.1 शुजा की पराजय

आगरा में शाहजहाँ और दाराशिकोह ने शत्रुओं से निपटने की पूरी तैयारी कर ली। दारा के पुत्र सुलेमान शिकोह को मिर्जा राजा जय सिंह के साथ शुजा का मार्ग रोकने के लिए भेजा। इस पूर्वी अभियान में दारा ने अपने लगभग सभी चुने हुए सैनिकों को भेजा। सुलेमान के नेतृत्व वाली सेना ने अच्छा परिणाम दिखाया। बनारस के निकट बहादुर नामक स्थान पर फरवरी 1658 में शुजा को पराजित कर दिया। इसके बाद सेना ने बंगाल की ओर भागते शुजा का पीछा बिहार तक किया।

1.4.2 धरमत का युद्ध

गुप्त संधि के परिणाम स्वरूप मुराद और औरंगजेब की संयुक्त सेनायें आगे बढ़ी। बादशाह ने उनका बढ़ना रोकने के लिए जोधपुर के राजा जसवन्त सिंह तथा कासिम खाँ को भेजा। अप्रैल 1658 ई0 को धरमत (उज्जैन से 14 मील द0प0) मे विरोधी सेनाओं की भीशण मुठभेड़ हुई जहाँ शाही दल असाधरण रूप से पराजित हुआ। राजपूत बड़ी वीरता से लड़े परन्तु कुशल सेनापति के अभाव में उनकी पराजय हुई। जसवन्त सिंह बुरी तरह घायल हुआ और विवश होकर उन्हें मैदान से हटना पड़ा, जबकि कासिम खाँ ने अपने स्वामी के लिए करीब–करीब कुछ भी नहीं किया। धरमत के युद्ध में औरंगजेब को यूरोपियन गोलंदाजों की सेवाएं प्राप्त हुई उसकी प्रतिश्ठा में वृद्धि हुई सर्वत्र उसका यश फैल गया। उसने इस विजय को चिर स्थायी करने के लिए धरमत के पास ही फतहाबाद नामक नगर बसाया। तदुपरान्त आगरा पहुंचने के लिए वह ग्वालियर की ओर बढ़ा।

1.4.3 सामूगढ़ का युद्ध

विजयी शहजादों ने चम्बल को पार किया तथा सामूगढ़ के मैदान में पहुंचे जो आगरे से आठ मील पूर्व में है। इस बार दारा ने अपनी सेना का संचालन स्वयं किया। दारा द्वारा औरंगजेब की थकी सेना पर तत्काल आक्रमण न करके एक दिन का अवकाश देना भारी भूल साबित हुई। मई 1658 ई0 को युद्ध प्रारम्भ हुआ। दारा ने बहादुरी से औरंगजेब का सामना किया। उसकी संयुक्त सेना में खलीलुल्लाखां ने दक्षिण और वाम भाग सिपहर शिकोह की अधीनता में तथा सम्मुख भाग विश्वासपात्र राजपूत सरदारों की संरक्षता (हाड़ राजपूत बरहा के सैयद) में था। जल्दी में इकट्ठी की गई सेना की कमजोरी छुपी नहीं रह सकी और औरंगजेब की सैन्य कुशलता के सामने वह टिक नहीं सका। दारा परास्त हुआ व उसने

भाग कर अपनी जान बचायी। यह युद्ध उत्तराधिकार का सबसे बड़ा और निर्णायक युद्ध सिद्ध हुआ। औरंगजेब ने विजय का सेहरा मुराद के सिर बांधा।

1.4.4 औरंगजेब द्वारा आगरा पर अधिकार

सामूगढ़ की विजय के पश्चात औरंगजेब मुराद के साथ राजधानी आगरा पहुंचा। दारा के अनेक समर्थक औरंगजेब–मुराद के पक्ष में मिल गए। शाहजहाँ ने विद्रोही राजकुमारों को मिलने के लिए बुलाया परंतु दोनों ने आशंकित होकर नगर पर अधिकार कर दुर्ग में शक्ति के बल पर प्रवेश की योजना बनायी। औरंगजेब ने दुर्ग में पानी की व्यवस्था बंद कर दी। बाध्य होकर रक्षकों को दुर्ग खोल देना पड़ा। औरंगजेब ने शाहजहाँ को आगरा के किले में नजरबंद कर दिया। जहाँआरा को पिता के साथ रहने की अनुमति दी गई इस प्रकार राजधानी पर मुराद और औरंगजेब ने कब्जा जमा लिया। आगरा दुर्ग के शाह बुर्ज में आठ वर्श कैद के पश्चात् 31 जनवरी 1666 ई0 शाहजहाँ इस लोक से विदा हुआ।

1.4.5 मुराद, शुजा और दारा का अंत

आगरा पर अधिकार के पश्चात् औरंगजेब ने अपना राज्याभिशेक करने के पूर्व चालाकी से अपने अन्य प्रतिद्वंद्वियों पर विजय प्राप्त करने की योजना बनायी। मुराद के साथ वह आगरा से दिल्ली की ओर बढ़ा। उसका उद्देश्य दारा का पीछा करना था। मार्ग में ही उसे मुराद को भी समाप्त करने का अवसर मिल गया। औरंगजेब की स्वेच्छा चारिता भी मुराद के लिए असहनीय बन गयी थी। मुराद के इरादों को भाँपकर औरंगजेब ने धोखा देकर मुराद को गिरफ्तार कर लिया और ग्वालियर के दुर्ग में उसे कैद कर लिया गया। वहीं 1661 ई0 में मुराद की हत्या करवा दी गई। औरंगजेब दिल्ली में जुलाई 1658 ई0 को बादशाह के रूप में राजसिंहासन पर बैठा।

दारा राजधानी को छोड़कर लाहौर पहुँचा, वहाँ से सिंध गुजरात होते हुए अजमेर पहुंचा। कम समय में दारा एक बड़ी सेना भरती करने में सफल न हो सका एवं वक्त पर जसवन्त सिंह ने भी उसे धोखा दिया। बाध्य होकर अकेले औरंगजेब की सेना के साथ मार्च 1659 में देवराई की लड़ाई लड़ी। औरंगजेब के साथ इस अंतिम मुठभेड़ में दारा पराजित हुआ। इधर–उधर भटकने के अनन्तर उसने दादर (सिंध) बलूची के मुखिया मालिक जिसवन खां के यहाँ शरण ली, किन्तु उसने विश्वासघात करके दारा और उसके पुत्र सिपहर शिकोह को बन्दी बना औरंगजेब के सुपुर्द कर दिया। गिरफ्तार दारा पर दिल्ली में मुकदमा चलाया गया जहाँ उसे धर्म विरोधी ठहराया गया और अगस्त 1659 ई0 मृत्युदंड दिया गया। दारा के ज्येश्ठ पुत्र सुलेमान शिकोह को 1660 ई0 मे गढ़वाल से बंदी बनाकर दिल्ली भेजा गया। जहाँ नीरन्तर विशपान के द्वारा मई 1662 ई0 में उसे मार डाला गया।

बहादुरगढ़ के युद्ध में पराजित होकर शुजा ने मुंगेर में शरण ली थी। अपनी शक्ति संगठित कर वह पुनः राजधानी की ओर बढ़ा। उत्तर प्रदेश में स्थित फतहपुर जिले के खजुआ

नामक स्थान पर औरंगजेब ने उसे जनवरी 1659 ई0 में असाधारण ढंग से परास्त कर डाला। मीर जमुला ने उसका पश्चिम बंगाल होकर ढाका तक और वहाँ से अरिकान तक पीछा किया। अरिकान में मेघ जाति के लोगों ने उसे मार डाला। औरंगजेब का ज्येश्ठ पुत्र शहजादा मुहम्मद, मीर जुमला से लड़कर कुछ समय के लिए शुजा से जा मिला। परन्तु इसका दण्ड उसे आजन्म कारावास के रूप में मिला तथा लगभग 1673 ई0 में उसकी मृत्यु हो गयी। दारा शिकोह के कनिश्ठ पुत्र सिपिह शुकोह तथा मुराद के पुत्र एजिद बख्श को भयानक प्रतिद्वंद्वी नहीं समझा गया तथा उन्हें जीवनदान मिला। बाद में उनका क्रमशः औरंगजेब की तीसरी, पाँचवी पुत्रियों के साथ विवाह कर दिया गया।

1.5 औरंगजेब की सफलता के कारण

लगभग दो वर्शों तक चलने वाले उत्तराधिकार के युद्ध में अंतिम विजय औरंगजेब को मिली। जून 1659 ई0 में खजवा और देवराई की निर्णयात्मक विजयों के बाद पुनः अत्यन्त जयजयकार के साथ राज्याभिशेक किया और उसके नाम का खुत्बा पढ़ा गया। औरंगजेब की सफलता और दारा तथा अन्य भाइयों की विफलता के लिए अनेक कारण उत्तरदायी थे।

- औरंगजेब में एक वीर सैनिक तथा उच्चकोटि के सेनापति के सभी गुण विद्यमान थे जबकि उसके भाइयों में इन गुणों का सर्वथा आभाव था। भीशण–से–भीशण परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर भी वह विचलित नहीं होता था।
- औरंगजेब कूटनीति का महान पण्डित था। उसने कभी भी यह प्रकट नहीं किया कि वह आगरा पर अधिकार करने जा रहा है। कूटनीति द्वारा ही मुराद को अपनी ओर मिलाया तथा उद्देश्य पूर्ति के उपरान्त उसका वध करवा दिया।
- औरंगजेब की धार्मिक नीति ने भी उसकी सफलता में सहयोग दिया। वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था। मुराद भी उसकी नीति का समर्थन करता था। कट्टरपंथियों/ मुगल सरदारों की धार्मिक भावनाओं को उभार कर उन्हें अपने पक्ष में करने और उनका समर्थन प्राप्त करने में सफल हुआ। दारा की धार्मिक सहिश्णुता को उसने धर्म विरोधी ठहराया और कट्टरपंथी वर्गों का समर्थन प्राप्त किया।
- औरंगजेब के प्रतिद्वंदी शहजादों की चारित्रिक भिन्नता का उत्तराधिकार युद्ध की गति पर विशेश प्रभाव पड़ा। प्रतिद्वंद्वियों की अयोग्यता और धरमत और सामूगढ़ में दुर्बल सैन्य संचालन के कारण उनकी हार हुई। दारा शिकोह अपने शत्रु की शक्ति का सही अन्दाज नहीं लगा पाया। शुजा ने अकेले ही तीनों भाइयों के विरूद्ध विद्रोह की भूल की। मुराद की अदूरदर्शिता ने उसे अत्यंत दुर्बल बना दिया।
- उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगजेब की सफलता के लिए शाहजहाँ भी जिम्मेदार था। बीमार पड़ने और ठीक होने के बाद शाहजहाँ ने प्रभावशाली ढंग से प्रशासन पर

नियंत्रण करने एवं विद्रोही पुत्रों को दबाने का कोई विशेश प्रयास नहीं किया।

- दारा की भूलों ने भी औरंगजेब की सफलता में सहायता पहुंचायी। दारा के पुत्र सुलेमान और शिकोह और जय सिंह की सेना द्वारा शुजा का बिहार तक पीछा करना। जसवन्त सिंह द्वारा मुराद और औरंगजेब की सेनाओं से धरमत में युद्ध करना और पराजित होना, (जिससे दारा के प्रशंसकों में निराशा फैली) सामूगढ़ में औरंगजेब की सेना को एक दिन का विश्राम देना, भारी भूल थी।

बोध प्रश्न

1) निम्नलिखित कथनों को पढ़कर ठीक (√) एवं गलत (×) का चिन्ह लगाओ।

   i) दारा को 'शाह इकबाल' की उपाधि दी गयी थी। ( )

   ii) शाहजहाँ ने मुराद को अपना वलीअहद नियुक्त किया। ( )

   iii) शाहजहाँ को ग्वालियर के दुर्ग में कैद किया गया। ( )

   iv) सुलेमान शिकोह द्वारा शुजा बहादुरपुर नामक स्थान पर पराजित हुआ। ( )

2) उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगजेब की सफलता के क्या कारण थे। दस पंक्तियों में इसका उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

1.6 सारांश

मुगल और भारतीय इतिहास में 1657–59 ई0 के उत्तराधिकार युद्ध का विशेश महत्व है। औरंगजेब और दारा के बीच की लड़ाई धार्मिक कट्टरता और धार्मिक सहिश्णुता के बीच

नहीं थी। दोनों विरोधियों के पक्ष में मुसलमान और हिंदू सरदार (राजपूत) करीब–करीब बराबर संख्या में थे। मनसबदारों ने अपने स्वार्थों के अनुसार एक या दूसरे भाई का समर्थन किया। उत्तराधिकार के युद्धों के परिणाम स्वरूप एक अत्यंत घातक परिपाटी आरंभ हो गई। यह निश्चित हो गया कि सिंहासन अब तलवार के बल पर ही मिल सकता है। मुगल राजपरिवार कलह का अखाड़ा बन गया और गृह युद्ध भयंकर होते चले गये। उत्तराधिकार के युद्धों से सामान्य प्रशासनिक व्यवस्थाएँ शिथिल पड़ गयी। जन–जीवन प्रभावित तथा वस्तुएं अत्यधिक मंहगी हो गयी।

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1) i) √ ii) × iii) × iv) √

2) भाग 1.5 को देखिये।

इस खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

1. Edwards and Gorette : Mughal Rule in India.
2. Ishwari Prasad : The Mughal Empire
3. Sexena, Banarsi Prasad : History of Shah Jhahan of Delhi (1923)
4. Bernier, Frangis: Travels in the Mughal Empire (Translated in to English by A. Constable)
5. मध्यकालीन भारत : इम्तियाज अहमद; बिहार रिसर्च एण्ड स्टडीज प्राइवेट लिमिटेड, तारा भवन, पटना।
6. उत्तर मुगल कालीन भारत का इतिहास, चन्द्र सतीश, नई दिल्ली 1980
7. दि रेलिजियस पॉलिसी ऑव दी मुगल इम्परर्स, शर्मा श्रीराम, बम्बई 1962.
8. मध्य कालीन भारत, इरफान हबीब, 1981

इकाई–2

औरंगजेब : राजूपत संबंध एवं धार्मिक नीति

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.1 औरंगजेब की धार्मिक नीति

2.1.1 इस्लाम विरोधी प्रथाओं पर प्रतिबंध

2.1.2 औरंगजेब की हिंदुओं के प्रति धार्मिक नीति

2.1.3 धार्मिक नीति के परिणाम

2.2 औरंगजेब व राजपूतों के बीच संबंध

2.2.1 मारवाड़ के साथ संबंध

2.2.2 मेवाड़ के साथ संबंध

2.2.3 मेवाड़ से संधि

2.2.4 राजपूत नीति के परिणाम

2.3 सारांश

2.4 शब्दावली

2.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.6 सहायक ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :–

- समझ पायेंगे कि वे कौन से घटक थे जिन्होंने औरंगजेब की धार्मिक नीति को प्रभावित किया।
- औरंगजेब की धार्मिक नीति के विभिन्न पहलुओं को समझ सकेंगे।
- औरंगजेब के राजपूत सम्बन्धी दृश्टिकोण की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- औरंगजेब की राजपूत नीति और गैर धार्मिक नीति के परिणामों से अवगत हो सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

इकाई प्रथम में हम देख चुकें हैं कि औरंगजेब ने किस प्रकार कूटनीति के द्वारा उत्तराधिकार के युद्धों में सफलता प्राप्त की और अन्त में अपने भाइयों का वध कर तथा बूढ़े पिता को बन्दी बनाकर सिंहासन प्राप्त कर लिया। मई 1659 ई0 में उसका राज्याभिशेक शानो शौकत से किया गया। उत्तराधिकार की लड़ाई से देश को जो हानि हुई तथा उससे शासन प्रबन्ध में जो ढील तथा कमजोरी आ गयी थी, औरंगजेब ने उसे ठीक करके सुचारू रूप से

चलने के लिए आवश्यक कदम उठाये। औरंगजेब ने शाहजहाँ के जीवन में उसे सत्ता से वंचित करके एक असाधारण कार्य किया था और उसका औचित्य प्रस्तुत करना अनिवार्य था। किसी शासक को उसके जीवन में दो ही परिस्थितियों में सत्ता से हटाया जा सकता था, यदि वह धर्म के विरूद्ध आचरण करें या वह बीमारी या और किसी कारण से प्रजा हित में कार्य करने में असमर्थ रहे। इसलिए उसने शाहजहाँ को विस्थापित करने के लिए उस पर अकर्मण्यता का आरोप लगाया था और शासन के आरम्भ में एक सक्रिय नीति अपनायी। इस काल में शाहजहाँ जीवित था व औरंगजेब ऐसे निर्णय नहीं लेना चाहता था जो सम्राज्य में अव्यवस्था फैलाये। उसकी आरम्भिक नीति सैनिक सफलताओं द्वारा पुश्ट न हो सकी। उसी समय सम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में विद्रोह व उपद्रव भड़क उठे जो आर्थिक असन्तोश से प्रेरित थे। चूँकि विद्रोहों में अधिकतर हिन्दू–प्रजा सक्रिय थी इसलिए हिंदुओं के दमन व कट्टरपंथी मुसलमानों का समर्थन प्राप्त करने के लिए उसने कट्टर धार्मिक नीति अपनायी।

मुगलों की राजपूत नीति ऐतिहासिक महत्व से भरी है। राजपूत भारतीय इतिहास में 11वीं शताब्दी से ही प्रधान महत्व रखते थे। औरंगजेब के शासन काल में राजपूतों और मुगलों के बीच युद्ध की स्थिति तब हुई जब मारवाड़ के राठौरों ने 1679 ई0 में विद्रोह कर दिया। कुछ इतिहासकार राजपूतों के विद्रोह को औरंगजेब के मुस्लिम कट्टरवादी विचारों के साथ जोड़ते हैं और उसे एक धर्मांध राजा मानते हैं। लेकिन कुछ अन्य इतिहासकारों ने औरंगजेब की नीतियों के पीछे उस समय की परिस्थितियों को उत्तरदायी माना है। उसके शासन के प्रथम बीस वर्शों (1659–1679) में राजपूतों के प्रति शत्रुता के चिन्ह कहीं भी दिखाई नहीं पड़ते। शाहजहाँ के पूरे शासन काल में किसी राजपूत सरदार को 7000/7000 का मनसब प्राप्त नहीं था, किन्तु औरंगजेब के काल में जय सिंह और जसवन्त सिंह में से प्रत्येक को यह मनसब प्राप्त हुआ। औरंगजेब राजपूतों का अंत करना नहीं चाहता था। इस नीति से उसकी कट्टरता और जिद का पता चलता है। अकबर ने जिस 'सुलहकुल' की नीति के द्वारा राजपूतों को अपना समर्थक बना लिया था, उसे औरंगजेब ने बदल दिया। मेवाड़ और मारवाड़ से आरम्भ होकर राजपूतों का स्वतंत्रता–संग्राम पूरे राजपूताना में फैल गया जिसे वह दबा नहीं सका।

2.1 औरंगजेब की धार्मिक नीति

भारतीय इतिहास में औरंगजेब अपनी धार्मिक कट्टरता तथा असहिश्णुता के लिए विख्यात है। उसकी धार्मिक नीति इस्लामी आचार–विचारों पर आधारित थी। वह धार्मिक कृत्यों का पूर्णता से पालन करता था। उसने विलासिता से अपने को दूर रखा और एक फकीर के समान जीवन यापन किया। जिसके कारण वह 'जिन्दा पीर' के नाम से विख्यात हुआ। औरंगजेब ने 'फतबा–ए–आलमगीर' के नाम से मुस्लिम धर्म नियमों को संगृहीत कर

एक विशाल पुस्तक तैयार करवाई जिसका भारत के इस्लामी राज्य में पूर्णतः पालन किया जाना आवश्य ठहराया गया।

औरंगजेब सर्वोपरि एक उत्साही सुन्नी मुसलमान था। उसकी धार्मिकनीति सांसारिक लाभ के किसी विशय से प्रभावित नहीं थी। उदार दारा के विरूद्ध सुन्नी कट्टरता के समर्थक के रूप में राजसिंहासन प्राप्त करने वाले की हैसियत से उसने कुरान को कठोरता से लागू करने का प्रयास किया। उसके सत्तारूढ़ होने से मुगल सम्राट की धार्मिक नीति में एक अभूतपूर्व परिवर्तन आया। राज सिंहासन पर बैठने के तुरंत बाद उसने इस्लाम को राजधर्म घोशित किया। उसने भारत को महजबी राज्य बनाने का प्रयास किया।

औरंगजेब की धार्मिक नीति को प्रभावित करने वाले दो तत्व प्रमुख थे। तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति एवं व्यक्तिगत अभिरूचि। जिन परिस्थितियों में औरंगजेब ने गद्दी प्राप्त की थी उनमें धार्मिक नीति में परिवर्तन अनिवार्य हो गया था। साथ ही तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तनों ने भी उसकी नीति को प्रभावित किया। अनेक क्षेत्रीय शक्तियाँ धार्मिक उन्माद बढ़ाकर अपना राजनीतिक स्वार्थ सिद्ध करना चाहती थीं। राजपूतों की मुगलों के प्रति स्वामी–भक्ति भी कमजोर पड़ती जा रही थी। हिंदू धर्म के पुनर्जागरण की प्रेरणा एवं विदेशियों (मुगलों) से भारत को स्वतंत्र कराने का आह्वान भी कुछ विचारक, संत एवं कवि इस समय कर रहे थे। इसके अतिरिक्त मुगल प्रशासन एवं राजनीति में लंबे समय से भाग लेने के कारण हिंदूओं का प्रभाव अधिक बढ़ गया था। जिसका दुरूपयोग वह धार्मिक आधार पर कर सकते थे। ऐसी स्थिति में हिंदुओं को नियंत्रण में रखने एवं मुसलमानों को अपना समर्थक बनाए रखने के लिए औरंगजेब के पास धार्मिक उदारता त्यागने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं था। उसने नैतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को दृढ़ करने वाले अनेक नियम लागू किये।

2.1.1 इस्लाम विरोधी प्रथाओं पर प्रतिबंध

शासक बनते ही औरंगजेब ने कुरान के नियमों का कड़ाई से पालन करवाना आरंभ किया जिससे 'दार–उल–हर्ब को दार–उल–इस्लाम' में परिवर्तित किया जा सके। उसने पहले से चली आ रही कुरान नियमविरोधी अनेक प्रथाओं पर पाबंदी लगा दी। उसने सिक्कों पर 'कलमा' खुदवाना बंद कर दिया ताकि ये सिक्के एक हाथ से दूसरे हाथ में जाकर गन्दे न हो जाएँ या फिर पैरों तले न रौंदे जाएँ। उसने नौरोज के त्यौहार पर पाबन्दी लगा दी क्योंकि इसे जरथुश्ट्र सम्प्रदाय का त्योहार माना जाता था। 'झरोखा दर्शन' (1669 ई0) एवं 'तुलादान' (1670 ई0) की प्रथा को भी इस्लाम विरोधी मानकर बंद कर दिया गया। तुलादान प्रथा से छोटे मनसबदारों पर बोझ पड़ता था। ज्योतिशों एवं पंचाग बनाने वालों पर रोक लगा दी गई। शासन के ग्यारहवें वर्श में (1669 ई0) औरंगजेब ने दरबार में गवैयों एवं संगीत तथा नाच गाने पर प्रतिबंध लगा दिया। गाँजा और अफीम को छोड़कर अन्य मादक पदार्थों के

उपयोग पर पाबंदी लगा दी। शराब का निर्माण एवं उसकी खरीद–बिक्री बंद कर दी गयी। नर्तकियों को विवाह कर लेने अथवा साम्राज्य से बाहर निकल जाने के आदेश दिये गए। कब्रों को छत से ढँकने, स्त्रियों को मजारों पर जाने, दाढ़ी और पाजामें की लंबाई निश्चित करने के भी आदेश निकाले गए। राजदरबार की भव्यता एवं आडंबरता को समाप्त कर दिया गया। मुसलमान व्यापारियों को कर मुक्त कर दिया। सभी प्रान्तों में मुहतसिबों की नियुक्ति की गई जिनका काम था कि वे इस बात की देखभाल करें कि लोग शरिया एवं जवाबित के नियमों के अनरूप रहते हैं या नहीं। राज्य के कुछ पद (पेशकार, करोड़ी इत्यादि) सिर्फ मुसलमानों के लिए सुरक्षित किये गये। बाद में यह प्रतिबंध हटा लिया गया।

2.1.2 औरंगजेब की हिंदुओं के प्रति धार्मिक नीति

औरंगजेब के दूसरे कार्य जिनके कारण उसे धर्म–असहिश्णु कहा जाता है, जिसमें मंदिरों के प्रति उसका दृश्टिकोण, तीर्थ–यात्रा तथा जजिया को लागू करना था। यह आदेश जारी किया गया कि हिन्दुओं के सभी मंदिरों को नश्ट कर दिया जाय। मंदिरों से संबंधी औरंगजेब की नीति कोई नयी नीति नहीं थी। उसने केवल उस नीति की पुश्टि की जो सल्तनत काल में थी और शाहजहाँ ने अपने शासन के आरंभिक काल में अपनाई थी। औरंगजेब जब गुजरात का प्रशासक था, उसने कई मंदिर तोड़ने के बारे में अपने शासन के आरंभ में ही आदेश जारी किया था। बनारस में काशी विश्वनाथ मंदिर, मथुरा के केशव राय जैसे प्रमुख मंदिरों का विध्वंस कर दिया गया और उनकी जगह मस्जिदों का निर्माण किया गया। मथुरा का नाम बदलकर इस्लामाबाद रख दिया। स्थानीय शक्तियों का विरोध जैसे–जैसे बढ़ता गया वैसे–वैसे हिंदू मंदिर के प्रति उसकी नीति कठोर होती गई। मंदिरों को तोड़े जाने का एक अन्य कारण भी था, मंदिरों में हिंदू शिक्षा की भी व्यवस्था रहती थी जहाँ इस्लाम विरोधी प्रचार होता था। यहाँ शिक्षा प्राप्त करने अनेक मुसलमान भी जाते थे। इससे इस्लाम धर्म का प्रभाव घटने का भी खतरा पैदा हो गया था। 1681 ई0 के पश्चात मंदिरों के तोड़े जाने की प्रक्रिया धीमी पड़ गई। औरंगजेब ने 1679 ई0 मे अकबर द्वारा हटाए गए 'जजिया' को पुनः लागू कर दिया। उसने शवदाह व धर्म–यात्रा पर भी रोक लगा दिया। जजिया लगाये जाने के राजनीतिक और सैद्धांतिक, दोनों तरह के कारण थे। इसका उद्देश्य मराठों और राजपूतों (जो युद्ध पर तुले थे) के विरूद्ध मुसलमानों को संगठित करना था। इसके अलावा दक्कन के मुसलमान राज्य और विशेशकर गोलकुण्डा भी इन गैर मुसलमानों का साथ दे रहे थे। दूसरे जज़िया सच्चे और धर्मभीरू मुसलमानों द्वारा उगाहा जाता था, वह सारा उलेमा को जाता था। इस प्रकार यह धर्मनेताओं अथवा उलेमा को, जिनमें से अधिकतर बेरोजगार थे दी जाने वाली बड़ी रिश्वत थी। इसके बावजूद जज़िया के नुकसान अधिक थे इसको लेकर हिंदुओं में बड़ा रोश था क्योंकि वे इसे भेदभाव का प्रतीक मानते थे। इसके उगाहने के तरीकों में भी भिन्नता थी। 1705 में दकन के युद्ध के दौरान, जिसका कोई अन्त नहीं नजर आता था, औरंगजेब ने जजिया पर रोक लगा दी। औरंगजेब ने हिंदुओं पर अनेक प्रकार के

सामाजिक प्रतिबंध लगाए। राजपूतों के अतिरिक्त समस्त हिन्दुओं को हाथी, घोड़े और पालकी पर चढ़ने के अधिकार से वंचित कर दिया। वे शस्त्र भी धारण नहीं कर सकते थे, तीर्थ स्थानों पर मेला लगाने पर रोक, दशहरा, होली, दीवाली त्योहारों पर रोक, हिन्दूओं पर चुंगी जारी रखी। हिन्दुओं को इस्लाम धर्म स्वीकार करने वाले को सरकारी नौकरियाँ, सम्मान एवं धन का लालच दिया गया।

2.1.3 धार्मिक नीति के परिणाम

औरंगजेब ने अपनी नीतियों के द्वारा राज्य में परिवर्तन लाने की चेश्टा नहीं की लेकिन इसमें इस्लाम के तत्वों पर जोर अवश्य दिया। यद्यपि वह कट्टर मुसलमान था और इस्लाम के कानूनों की मान्यता कायम रखना चाहता था, तथापि शासक के रूप में औरंगजेब की दिलचस्पी अपने साम्राज्य के विस्तार उसकी मजबूती में ही थी। हिंदुओं के विरूद्ध उठाए गए कदम राजनीतिक दृश्टिकोण से यथोचित थे मुगल साम्राज्य के प्रति उनकी निश्ठा बनाए रखने एवं साम्राज्य विरोधी गतिविधियों पर नियंत्रण रखने के लिए ऐसा करना आवश्यक था। औरंगजेब ने द0 के मंदिरों को नहीं तोड़ा, उसने हिंदू मठों और मंदिरों को अनुदान भी दिए। यद्यपि बादशाह औरंगजेब को अपने धर्म का सच्चा ईमानदार व्याख्याता होने का श्रेय था, पर यह भी सच है कि अपने उत्साह एवं जोश के कारण वह यह भूल गया कि भाग्य ने जिस देश पर उसको शासन करने का विधान रचा था, उसकी आबादी समान जाति की नहीं थी। औरंगजेब ने राज्य के हितों का अपने धर्म के हितों से समीकरण कर तथा इससे मतभेद रखने वालों को अप्रसन्न कर अवश्य ही भूल की और इसके दूरगामी गंभीर परिणाम निकलें।

झरोखा दर्शन पद्धति समाप्त करने के कारण सम्राट पूजा की परिपाटी विकसित होने लगी थी जो वांछनीय नहीं थी। दरबारी–संगीत काव्यों, इतिहासकारों को हटाना और तुलादान की प्रथा बंद करना, राजदरबार में सोने चांदी की वस्तुओं का उपयोग बन्द किया गया। ऐसे निर्णय मितव्ययिता के उद्देश्य से अनिवार्य थे क्योंकि साम्राज्य में आर्थिक संकट गम्भीर रूप धारण कर चुका था।

राजस्व विभाग से हिंदुओं को हटाकर मुसलमानों को भर्ती करना, मुसलमान व्यापारियों को चुंगी कर से मुक्त करने का उद्देश्य मुसलमानों को रोजगार और व्यापार की ओर आकर्शित करना था, यद्यपि वह इसमें सफल नहीं हुआ।

आर्थिक संकट ने विद्रोह भड़काया अधिकतर विद्रोही हिन्दू प्रजा थी, कट्टरपंथी मुसलमानों ने इन विद्रोहों को मुस्लिम शासन के विरूद्ध संघर्श के रूप में देखा जबकि हिन्दू विद्रोहियों ने सरकार द्वारा दमनात्मक कार्रवाई को धार्मिक उत्पीड़न के रूप में देखा।

औरंगजेब के लिए न तो अकबर की तरह एक सहिश्णुतापूर्ण नीति अपनाना सम्भव था और न हिन्दू प्रजा की पूर्ण अवहेलना सम्भव थी। इसी दुविधा में वह कभी–कभी परस्पर विरोधी निर्णय लेने पर बाध्य हुआ जिस कारण उसकी धार्मिक नीति असफल सिद्ध हुई।

2.2 औरंगजेब व राजपूतों के बीच सम्बन्ध

बाबर से शाहजहाँ के समय तक मुगलों ने राजपूतों की शक्ति को कभी नजरअंदाज नहीं किया। राजपूतों से मुगलों ने परिस्थिति के अनुसार मैत्रीपूर्वक एवं वैवाहिक संबंध स्थापित किए। राजपूतों ने मुगलों की सेना एवं प्रशासन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। औरंगजेब के सम्राट बनने के पूर्व और उसके कुछ वर्शों उपरांत भी औरंगजेब और राजपूतों के संबंध सौहार्दपूर्ण बने रहे, परंतु धीरे–धीरे ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गईं जिससे मुगलों और राजपूतों के संबंध वैमनस्यपूर्ण हो गए। इसका एक प्रधान कारण था उत्तराधिकार का युद्ध। इस युद्ध में राजपूतों ने दारा का पक्ष लिया, इससे औरंगजेब को उनकी स्वामिभक्ति में संदेह हुआ और औरंगजेब की धार्मिक नीतियों से राजपूतों में अविश्वास की भावना पैदा हुई।

2.2.1 मारवाड़ के साथ सम्बन्ध

औरंगजेब का ध्यान मारवाड़ की विजय की ओर अनेक कारणों से हुआ। मारवाड़ युद्ध कौशल की दृश्टि से एक महत्वपूर्ण स्थान था, क्योंकि मुगल राजधानी से पश्चिम भारत के समृद्ध नगरों एवं बंदरगाहों के कुछ सैनिक एवं व्यापारिक रास्तों पर इसका नियंत्रण था। उत्तर भारत में एक प्रबल सैनिक राज्य के रूप में इसकी स्थिति औरंगजेब को फूटी आँखों भी नहीं सुहाती थी। मारवाड़ के शासक जसवंत सिंह की मृत्यु अफगानों से युद्ध करते हुए सीमा प्रांत के जमरूद नामक स्थान पर 1678 ई0 में हो गई। इस समाचार को सुनते ही औरंगजेब ने तुरंत मारवाड़ को मिला लेने के लिए कदम उठाया। मई के महीने में नागौर के नायक तथा जसवन्त के पोते इन्द्र सिंह राठौर को उत्तराधिकार शुल्क के रूप में छत्तीस लाख रूपये देने पर जोधपुर का राजा मान लिया गया। लेकिन उसे अधिकांश राजपूतों का सहयोग नहीं मिल सका। फरवरी 1679 ई0 में जसवन्त की मृत्यु के पश्चात लाहौर में उसके दो पुत्रों का जन्म हो चुका था एक जन्म के तुरन्त बाद मर गया, परन्तु दूसरा, जिसका नाम अजीत सिंह था, जीवित रहा। जसवंत सिंह का सेनापति दुर्गादास अजीत सिंह को लेकर मुगल दरबार में पहुंचा एवं जोधपुर की गद्दी जसवंत सिंह के वास्तविक उत्तराधिकारी अजीत सिंह को सौंपने की माँग की। कुछ आधुनिक इतिहासकारों के अनुसार औरंगजेब जोधपुर का प्रशासन जसवंत सिंह के पुत्र के हाथों सौपने को तैयार था बशर्ते कि अजीत सिंह इस्लाम अपना ले–लेकिन समसामयिक सूत्रों में इस बात का कोई हवाला नहीं मिलता। हुकूमत–री–बही के अनुसार औरंगजेब ने राज्य के विभाजन की चाल चली। उसने अजीत सिंह को मनसब देने एवं मारवाड़ के परगनों, सोजत और जैतारण, उसकी जागीर बने रहेंगे। इस प्रकार औरंगजेब मारवाड़ के परिवार की दो शाखाओं के बीच विभाजन करने की सोच रहा था, परंतु राठौरों को यह प्रस्ताव स्वीकृत नहीं था। क्रुद्ध होकर औरंगजेब ने अजीत सिंह और जसवंत सिंह की रानियों को नूरगढ़ के किले में कैद करने की आज्ञा दी। इससे राजपूतों की क्रोधाग्रि और अधिक भड़क उठी दुर्गादास अजीत सिंह और रानियों को साथ लेकर सुरक्षित जोधपुर पहुंचाने में सफल हो गया। अजीत सिंह को जोधपुर के सिंहासन पर बैठाया

गया। दुर्गादास के नेतृत्व में राठौरों ने मुगलों से संघर्श करने की तैयारी आरंभ कर दी। औंरंगजेब ने इन्द्र सिंह को उसकी अयोग्यता के लिए हटा तो दिया लेकिन अजीत सिंह के प्रति उसने कठोर रूख अपनाया।

औरंगजेब ने विभिन्न प्रान्तों से बहुत सी फौजें मगवायी और तीनों शहजादों–मुअज्जम, आजम एवं अकबर को सेना के भिन्न–भिन्न दस्तों का कमान दे दिया गया वह स्वयं अगस्त 1679 ई0 में अजमेर गया। राठौर मुगलों का सामना न कर सकें और जोधपुर को जीत लिया गया। जोधपुर पर अधिकार कर मुगलों ने अनेक मंदिरों एवं मूर्तियों के नश्ट कर दिया। उन्माद में मुगलों ने अन्धाधुन्ध कार्य किये। इस युद्ध में स्त्रियों और बच्चों ने भी भाग लिया। पराजित होकर भी राठौरों ने हथियार नहीं डाले और गुरिल्ला युद्ध द्वारा मुगलों को परेशान करते रहे। मुगल बादशाह की इस आक्रमणकारी नीति के कारण मेवाड़ के वीर सिसोदिया मारवाड़ के निराश राठोरों से जा मिले। मेवाड़ पर मुगल से मेवाड़ पर मुगल विजय का खतरा उपस्थित हो गया था। राय सिंह नहीं चाहता था कि उत्तराधिकार जैसे मामलों में और राजपूतों की आन्तरिक समस्याओं में मुगलों का किसी प्रकार हस्तक्षेप हो। कई वर्श के बाद जजिया के पुनः लगाये जाने से वह अत्यन्त क्रुध हो उठा था। राठौर और सिसोदिया संधि के कारण राजपूत–युद्ध ने स्वतंत्रता की रक्षा के लिए एक राश्ट्रीय विद्रोह का रूप धारण कर लिया।

2.2.2 मेवाड़ के साथ सम्बन्ध

महाराजा राज सिंह अब तक समझ गया था कि औरंगजेब राजपूतों को जड़ से उखाड़ फेंकना चाहता है अतएव महाराणा अजीत सिंह का पक्ष लेते हुए वह मुगलों से जोरदार टक्कर लेने के लिए तैयार हो गया। वर्श 1679 में औरंगजेब ने मेवाड़ पर हसन अली खां के नेतृत्व में सेना भेजी। महाराणा अपनी राजधानी उदयपुर को छोड़कर पहाड़ियों पर भाग निकला। चित्तौड़ और मेवाड़ पर अधिकार कर लेने के बाद हसन अलीखां ने वहाँ के मन्दिर को तोड़ना शुरू कर दिया। राज सिंह का पीछा करके उसने उसे फरवरी 1680 ई0 को हरा दिया। औरंगजेब राजकुमार अकबर को चित्तौड़ का भार सौंपकर अजमेर वापस चला गया। परन्तु शीघ्र ही उसकी आँखें खुल गयी। राजपूत छुप कर युद्ध करते रहे। राजपूतों ने मई 1680 ई0 में शाहजादा अकबर के अधीन रहने वाली मुगल सेना पर अचानक हमला कर दिया तथा भोजन सामग्री लेकर भाग गये। बादशाह ने इस पराजय के लिए शाहजादा अकबर को उत्तरदायी ठहराया। उसने शाहजादा आज़म के अधीन चित्तौड़ की सेना को रख दिया तथा अकबर को मारवाड़ भेज दिया। शाहजादा अकबर ने अपने हटाये जाने के अपमान की पीड़ा का अनुभव किया। वह राजपूतों के साथ मिलकर दिल्ली के राज सिंहासन का सपना देखने लगा। सिसोदिया एवं राठौर ने उसे सैनिक सहायता प्रदान की। लगभग सत्तर हजार व्यक्तियों की एक सेना लेकर शाहजादा अकबर दुर्गादास के साथ 15 जनवरी 1681 ई0 को अजमेर के निकट पहुँचा। औरंगजेब इस समय, अजमेर में ही था। औरंगजेब की स्थिति

संकटपूर्ण थी, क्योंकि उसकी सेना की दो प्रमुख टुकड़ियाँ चित्तौड़ एवं राजसमुद्र झील के निकट थी। यदि शाहजादा तुरन्त इस 'सुअवसर' का उपयोग कर लेता तो बादशाह दिक्कत में पड़ सकता था। परन्तु 1 नवम्बर 1680 ई0 को महारणा की मृत्यु तथा उसके पुत्र जय सिंह के राज्यारोहण के कारण औरंगजेब पर आक्रमण करने की योजना को कार्यरूप में परिणत करने में अधिक समय लग गया। अकबर ने 11 जनवरी 1681 ई0 को अपने आपको भारत का सम्राट घोशित कर दिया। औरंगजेब ने कूटनीतिक चाल चलकर राजपूतों और अकबर में संदेह पैदा कर दिया। उसने यह झूठा पत्र लिखकर दुर्गादास के शिविर में बाहर डलवाया, ''बेटे अकबर! राजपूतों को ठगकर तुमने ठीक ही किया, यही तो मैने तुमसे कहा था, अब इतना और करो कि राजपूत हमारी–तुम्हारी दोनों की फौजों के बीच आ जाये। बस इसी मे तुम्हारी विजय है।'' इस पत्र के फलस्वरूप दुर्गादास अकबर के विरूद्ध हो गया तथा राजपूतों ने उसका साथ छोड़ दिया। लेकिन बाद में दुर्गादास को औरंगजेब की चालाकी का पता लग गया और उसने अकबर को पुनः शरण में ले लिया तथा उसकी रक्षा करना अपना परम कर्तव्य समझा। उसको मराठा सरदार शंभाजी की शरण में भेज दिया गया। मराठों से भी उसे कोई विशेश सहायता नहीं मिल सकी। हताश होकर वह फारस चला गया जहाँ 1704 ई0 में उसकी मृत्यु हो गई। शाहजादा अकबर के विद्रोह से दिल्ली का बादशाह तो बदला नहीं जा सका परन्तु इससे मेवाड़ के राणा को बहुत चैन मिला। किन्तु मुगलों के विरूद्ध उसकी क्षणिक सफलता से उसकी प्रजा को बहुत कश्ट हुआ। मुगलों को भी काफी तकलीफ हुई तथा उन्हें राजपूतों के विरूद्ध कोई निश्चित लाभ नहीं हो सका।

2.2.3 मेवाड़ से सन्धि

बादशाह औरंगजेब ने राणा राज सिंह के पुत्र राणा जगत सिंह, जो राज सिंह का उत्तराधिकारी था, के साथ जून 1681 ई0 में संधि कर ली। सन्धि की शर्तें इस प्रकार थी।

- राजा जय सिंह को मेवाड़ का राणा स्वीकार कर लिया गया और उसको पाँच हजार का मनसबादार बना दिया गया।
- राजा ने अजीत सिंह का पक्ष नहीं लेने का वादा किया। औरंगजेब ने यह आश्वासन अवश्य दिया कि वह अजीत सिंह का राज्य उसके वयस्क होने पर वापस कर देगा।
- अपने राज्य पर लगाये जजिया के एवज में महाराजा ने सम्राट को मादलपुर और नागोर के परगने दे दिये।
- राणा ने विद्रोही राजाओं को शरण न देने का वादा किया।
- मुगलों ने मेवाड़ राज्य से सेना हटा लेने का वादा किया और औरंगजेब एक विशाल सेना सहित दक्षिण चला गया।

इस संधि तथा अजीत सिंह को दिये गये वचन से राजपूत संतुश्ट नहीं हुए परन्तु

मारवाड़ ने सम्राट से सीधे संधि नहीं की और अगले 27 वर्शों तक मुगलों से लड़ते रहे।

औरंगजेब दक्षिण में रहा, तब तक मारवाड़ में विद्रोह शान्त नहीं हुआ। 1690 में दुर्गादास ने अजमेर के राज्यपाल को हरा दिया परन्तु मारवाड़ के नये राज्यपाल शुजात खाँ ने स्थानीय राठौर सरदारों से गुप्त सन्धि कर ली थी, जिसके अनुसार वह उन्हें चौथ अर्थात चुंगी करों की सरकारी आय का चौथाई भाग देता था। इस कारण दुर्गादास मारवाड़ को पुनः प्राप्त कर सका। बाद में दुर्गादास ने सम्राट से संधि कर ली, सम्राट ने उसे 3000 का मनसबदार और गुजरात में पाटन का सेनानायक नियुक्त किया। अजीत सिंह को जालौर, सन्योद और सीवान के परगने जागीर रूप में दिया तथा शाही नौकरी में एक पद दे दिया गया। परन्तु उसे अपने राज्य में बहाल नहीं किया गया। परन्तु पुनः दुर्गादास और अजीत सिंह ने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। एक बार फिर औरंगजेब को मजबूर होकर अजीत सिंह से संधि करनी पड़ी। 1706 ई0 में मराठों ने गुजरात पर आक्रमण किया तो अजीत सिंह और दुर्गादास ने पुनः विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। इसी बीच मुगल सम्राट औरंगजेब की मृत्यु का समाचार राजस्थान पहुंचा तो अजीत सिंह ने मुगल राज्यपाल को मारवाड़ से निकाल भगाया। सोपान, पाली तथा मेरठ को भी मुगलों से पुनः छीनकर 1707 में अपने आपके मारवाड़ का महाराज घोशित किया।

2.2.4 औरंगजेब को राजपूत नीति का परिणाम

औरंगजेब की राजपूत नीति अदूरदर्शितापूर्ण थी। औरंगजेब के राजपूत युद्धों के परिणाम उसके साम्राज्य के लिए विनाशकारी हुए। हजारों व्यक्तियों की बलि चढ़ायी गयी तथा मरूभूमि पर अपार धन नश्ट किया गया। मारवाड़ और मेवाड़ में मुगलों की असफलता से मुगलों के सैनिक सम्मान को भी धक्का पहुंचा। यद्यपि इस क्षेत्र में 1681 ई0 के बाद मारवाड़ के युद्धों में मुगलों की तरफ से छोटी–छोटी सेनाएं ही लड़ी इनका कोई विशेश सामरिक महत्व भी नहीं था। राजपूतों के सहयोग से शाहजादा अकबर ने विद्रोह किया राजपूतों के अभाव में औरंगजेब को दक्षिण भारत में बड़े कश्ट उठाने पड़े। लेनपुल ने ठीक ही कहा है, ''औरंगजेब को अपनी दाहिनी भुजा खोकर दक्षिण के शत्रुओं के साथ युद्ध करना पड़ा।'' इसी प्रकार उत्तर–पश्चिम सीमा जहाँ की व्यग्र अफगान जाति अब तक शान्त नहीं हो सकी थी; नियंत्रण में रखने के महत्वपूर्ण कार्य में इन वीर नायकों और सैनिकों की सेना से हाथ धोना पड़ा। औरंगजेब की धार्मिक नीतियों से राजपूतों अविश्वास की भावना पैदा कर दी। इसमें संदेह नहीं कि राजपूत नीति असफल रही। 1678–89 के बीच जब मारवाड़ में युद्ध का रूप विकराल हो चुका था, औरंगजेब को मराठों पर पूरा ध्यान देने का अवसर नहीं मिल पाया। यदि औरंगजेब ने राठौरों के प्रति उदारता दिखाई होती और हठ की जगह व्यवहारिकता से काम लिया होता तो इस अनावश्यक युद्ध से और इसके हानिकारक परिणामों से बचा जा सकता था।

2.2.5 बोध प्रश्न

1) निम्नलिखित कथनों को पढ़कर ठीक (√) एवं गलत (×) का चिन्ह लगाओ।

   i) औरंगजेब के पुत्र आजम ने अपने आपको भारत का सम्राट घोशित किया। ( )

   ii) औरंगजेब ने झरोखता दर्शन की प्रथा समाप्त कर दी। ( )

   iii) औरंगजेब ने हिंदुओं पर पुनः जजिया लगा दिया था। ( )

   iv) दुर्गादास अजीत सिंह को सुरक्षित मारवाड़ लाने में सफल हो गया।( )

2) औरंगजेब की धार्मिक नीत के प्रभावों का विवेचन कीजिए। इसका दस पंक्तियों में इसका उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2.2.5 सारांश

इस इकाई में आपने औरंगजेब के राजपूत संबंध एवं धार्मिक नीति का अध्ययन किया और आपने देखा कि किस प्रकार उसकी धार्मिक नीतियों ने राजपूत संबंधों को प्रभावित किया। उसकी धार्मिक नीति से राज्य के स्वरूप में जनता पर रचनात्मक के बजाय विध्वंसात्मक प्रभाव अधिक पड़ा। दोनों वर्गों के बीच आपसी समझ की जो उदार भावना बढ़ी थी वह खत्म हो गयी व उसमें ठहराव आ गया। धार्मिक अतिवादिता के कारण अतीतजीवी दृश्टि हावी होने लगी व रूढिवादिता, कट्टरता व अंधविश्वास समाज पर ज्यादा गहरायी से जम गये। इससे साम्राज्य के स्वरूप को क्षति पहुंची व साम्राज्य का पतन आरम्भ हुआ।

इस इकाई में आपने अध्ययन किया कि औरंगजेब की राजपूत नीति में परिवर्तन का मुख्य कारण औरंगजेब की धार्मिक असिहश्णुता की नीति थी। बाबर, हुमायूँ, अकबर व जहाँगीर ने राजपूतों के साथ उदारता की नीति अपनायी थी। अकबर ने राजपूतों के सहयोग से ही एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। शाहजहाँ के काल में यह सम्बन्ध कुछ कटु हो चले थे– लेकिन औरंगजेब के काल में यह सम्बन्ध बिलकुल ही खराब हो गये। हाड़ा और

कछवाह जैसे कई राजपूत सरदार मुगलों की सेवा में बने रहे लेकिन मेवाड़ और मारवाड़ से संघर्श के कारण एक बहुत महत्वपूर्ण समय में मुगलों के राजपूतों के साथ संबंध कमजोर पड़ गये और इससे अपने पुराने और विश्वसनीय मित्रों के प्रति मुगल के समर्थन में संदेह उत्पन्न हो गया। इस खंड की इकाई पंचम में हम औरंगजेब की दोनों राजपूत और धार्मिक नीतियों व मुगल साम्राज्य के पतन कारणों से उनके सम्बन्ध का अध्ययन करेंगे।

2.2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1) i) √ ii) × iii) × iv) √

2) भाग 2.1.3 को देखिये।

2.2.8 इस खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

1. Kazmi, Mirza Muhammad: Alamgir-nam
2. Sharma, S.R. : Religious Policy of the Mughuls.
3. Sarkar J.N. : History of Aurangzab
4. सर यदुनाथ सरवार : औरंगजेब का इतिहास

इकाई–3

औरंगजेब : दक्षिण नीति एवं विफलता के कारण

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 औरंगजेब की दक्षिण नीति के कारण

3.3 बीजापुर से संघर्श

3.4 गोलकुंडा पर अधिकार

3.5 मराठों के साथ संघर्श

3.5.1 औरंगजेब और शिवाजी

3.5.2 औरंगजेब और शंभाजी

3.5.3 औरंगजेब और राजाराम

3.5.4 औरंगजेब और ताराबाई

3.6 दक्षिण नीति के परिणाम

3.7 दक्षिण नीति : विफलता के कारण

3.8 बोध प्रश्न

3.9 सरांश

3.10 शब्दावली

3.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.12 सहायक ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे कि :–

- औरंगजेब की दक्षिण नीति के क्या कारण थे।
- आप संघर्श में शामिल प्रमुख दक्षिण राज्यों की स्थिति से परिचित हो पायेंगे।
- औरंगजेब की दक्षिण नीति के परिणामों से परिचित हो पायेंगे।
- औरंगजेब की दक्षिण नीति की विफलताओं के कारणों को समझ पायेंगे।

3.1 प्रस्तावना

साम्राज्य विस्तार की दृश्टि से मुगलों की दक्षिण नीति अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। भारतीय इतिहास में मौर्य साम्राज्य के पतनोपरान्त मुगलों ने ही सर्वप्रथम उत्तर और दक्षिण भारत को

संगठित करने में प्रशंसनीय सफलता प्राप्त की और लगभग दो हजार सालों के बाद भारत की भौगोलिक एकता पुनर्स्थापित हुई। प्रथम दो मुगल शासक बाबर तथा हुमायूँ को दक्षिण भारत की ओर ध्यान देने का अवसर नहीं मिला था। अकबर प्रथम मुगल सम्राट था जिसने दक्षिण विजय के बारे में नियोजित नीति बनाई। जहाँगीर और शाहजहाँ ने भी अकबर की ही नीति का अनुसरण किया। उसके लिए भारत में एक–छत्र साम्राज्य स्थापित करने के लिए दक्षिण भारत की विजय अनिवार्य थी। उसके शासन का उत्तरार्द्ध दक्षिण शक्तियों से युद्ध करने एवं दक्षिण में अपनी शक्ति सुदृढ़ करने में व्यतीत हुआ।

3.2 औरंगजेब की दक्षिण नीति के कारण

शाहजहाँ के शासन काल में औरंगजेब दो बार दक्षिण का सूबेदार रहा था और इस कारण वह दक्षिण की राजनीति से पूरी तरह वाकिफ था। औंरगजेब की दक्षिण नीति का उद्देश्य राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक था। दक्षिण में इस समय तीन प्रमुख शक्तियाँ थी, बीजापुर, गोलकुण्डा तथा मराठे। उसका उद्देश्य इन राज्यों पर अधिकार कर, इन्हें मुगल साम्राज्य में मिलाकर अपनी स्थिति सुदृढ़ करना था तथा मुगल साम्राज्य का विस्तार उसका सर्वोपरी लक्ष्य था। दक्षिण भारत में यूरोपीय व्यापारियों की बढ़ती राजनीति लालसा पर भी नियंत्रण आवश्यक था। औरंगजेब के शासन तक राज्य की आर्थिक स्थिति दुर्बल हो चुकी दक्षिण के राज्यों के पास बहुत अधिक धन था जिससे धन की कमी को दूर किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त राजनीतिक अशांति एवं उत्तरी भागों में औरंगजेब को फँसा देखकर दक्षिणी रियासतों ने मुंगलों को कर देना भी बंद कर दिया ाि। इस बकाए और साथ ही हर्जाने को वसूलना आवश्यक था। औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुलसमान था। वह शिया मुसलमानों से घृणा करता था। बीजापुर और गोलकुण्डा राज्यों को औरंगजेब द्वारा हस्तगत करने का एक कारण उसके शासकों का शिया होना था। क्योंकि वह शिया राज्यों को इस्लाम विरोधी मानता था। मराठों के अधीन हिंदू पादशाही की स्थापना का जो प्रयास किया जा रहा था, उसको खत्म करना आवश्यक था। विद्रोही अकबर ने दक्षिण में पहुँचकर मराठों की सहायता से खलबली मचा दी थीं अतः उसने साम्राज्य के हित के विरूद्ध उपस्थित इन संकटों को रोकने के लिए स्वयं सेना लेकर दक्षिण को प्रस्थान किया।

3.3 बीजापुर से संघर्श

मुस्लिम राज्यों में दक्षिण भारत का सबसे अधिक शक्तिशाली बीजापुर का आदिलशाली राजवंश था। औरंगजेब के सम्राट बनने के समय दक्षिण भारत में दो समस्याएं थीं पहला शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति थी और दूसरी समस्या बीजापुर को इस बात के लिए राजी करना था कि वह 1636 की संधि के अंतर्गत प्राप्त क्षेत्रों को मुगलों को वापस कर दें।

औरंगजेब के उत्तराधिकार के युद्ध में शामिल होने से पूर्व 1657 ई0 में वह कल्याणी तथा बिदर बीजापुर ले चुका था। लेकिन उत्तराधिकार के युद्ध से उत्पन्न परिस्थिति का लाभ

उठाकर उन्होंने मुगलों से मैत्री तोड़ ली थी। वह अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयास कर रहा था। औरंगजेब को यह भय भी हुआ कि कहीं सुलतान आदिलशाह मराठों के साथ मिलकर परेशान न करे। उसने बीजापुर पर आक्रमण करने की योजना बनाई। औरंगजेब ने 1665 ई0 के प्रारम्भकाल में जयपुर नरेश जय सिंह को, बीजापुर 1636 ई0 की संधि की शर्तों को पूरा करने में टालमटोल करने के कारण दण्ड देने को भेजा।

सबसे पहले राजपूत सेनापति जयसिंह ने शिवाजी को एक लड़ाई में नीचा दिखाया जिसके फलस्वरूप जून 1665 ई0 में पुरन्दर का पतन हुआ। जयसिंह ने शिवाजी के सहयेाग से, जो अब मुगलों का मित्र बन गया था, बीजापुर पर आक्रमण प्रारम्भ किया। प्रारम्भिक लम्बी लड़ाई में बीजापुर सेनाओं ने मुगलों को गोरिल्ला युद्ध में बहुत तंग किया तो भी जय सिंह बीजापुर के किले तक पहुँच गया। बीजापुर के सुल्तान ने अपनी राजधानी में सभी रक्षात्मक साधनों का प्रयोग करके अपना मोर्चा काफी मजबूत बना लिया था। दक्षिण की सभी रियासतें इस मुगल संघर्श में संगठित हो गयी। यद्यपि जयसिंह को कुछ आरंभिक सफलताएँ हाथ लगीं, परंतु बीजापुर राज्य कुबुबशाही सेना की सहायता और छापामार युद्ध प्रणाली के आधार पर अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने में सफल हुआ। जय सिंह के इस अभियान से मुगलों को न तो धन और न ही किसी जमीन की प्राप्ति हो सकी। इस निराशा तथा औरंगजेब की नाराजगी के कारण जय सिंह की वापस लौटते समय बुरहानपुर में 1667 ई0 में मृत्यु हो गयी। जय सिंह की जगह शहजादा मुअज्जम को दक्षिण अभियान का नेतृत्व सौंपा गया। उसने 1668 ई0 में रिश्वत देकर किसी प्रकार शोलापुर प्राप्त किया।

1668 से 1676 ई0 अर्थात लगभग दस वर्श तक बीजापुर पर मुगलों ने कोई भी आक्रमण नहीं किया। इस समय बीजापुर के सुलतान आदिलशाह द्वितीय ने अबुल मोहम्मद नामक एक योग्य मंत्री के हाथ प्रशासन का भार सौंप दिया, जिससे राज्य में सुख और शांति रही? दिसम्बर 1672 ई0 में सुलतान की मृत्यु हो गयी और उसका नाबालिग पुत्र सिकंदरशाह बीजापुर की गद्दी पर बैठा। बीजापुर के सामन्त दो दलों में विभक्त हो गये। एक दल अफगानों का था और दूसरे दल में दक्षिणी और अबीसनिया के लोग सम्मिलित थे। इस प्रकार सामन्तों में गृहयुद्ध फैल गया इस अवसर का लाभ उठाकर राज्यपाल बहादुरखाँ ने 1676 ई0 में बीजापुर पर आक्रमण किया, परन्तु परास्त हुआ। औरंगजब अत्यनत अप्रसन्न हुआ उसने बहादुर खाँ को वापस बुला लिया और उसके स्थान पर दिलेरखाँ को दक्षिण का राज्यपाल नियुक्त किया। दिलेर खाँ बीजापुर के मन्त्री सिद्दी मसूद के साथ शड़यन्त्र करके बीजापुर को मुगल साम्राज्य की वास्तविक अधीनता में लाने में सफल हो गया। बीजापुर और मुगल सेना ने गोलकुंडा पर आक्रमण किया जो विफल हो गया। गोलकुंडा के प्रभावशाली सरदार अखन्ना को बीजापुर के प्रशासन का सलाहकार बनाया गया। सिद्दी मसूद ने दिलेर खाँ को फिर धोखा दे कर मराठों से हाथ मिलाया। क्रुद्ध होकर दिलेर खाँ का बीजापुर को कब्जे में करने का प्रयास (1679–80 ई0) भी असफल रहा क्योंकि किसी भी मुगल प्रशासक

के पास ऐसे साधन नहीं थें जिसमें वह दकन के राज्यों की संगठित शक्ति का मुकाबला कर सकें/दक्षिण की तीनों शक्तियाँ संगठित हो गईं। मराठों ने मुगलों को परेशान करना आरंभ कर दिया। बाध्य होकर दिलेरखाँ को औरंगजेब ने वापस बुला लिया।

इस प्रकार अब तक दकन में मुगलों को कोई विशेश सफलता हासिल नहीं हुई। 1681 ई0 में औरंगजेब स्वयं दक्षिण में अपने विद्रोही पुत्र शहजादा अकबर का पीछा करते हुये पहुँचा। उसने सारी शक्ति शिवाजी के लड़के तथा उत्तराधिकारी शंभाजी के खिलाफ लगा दी। अब तक वह समझ गया कि जब तक बीजापुर और गोलकुंडा राज्यों को पूर्णतः समाप्त नहीं कर दिया जाता है मराठों को वश में करना कठिन है। उसने पहले दोनों शिया राज्यों को मराठों का साथ छोड़ने के लिए बाध्य किया, परंतु विफल रहा। मुगलों के सामने मराठे ढाल के समान थे और दकन के राज्य यह नहीं चाहते थे कि उनकी यह सुरक्षा समाप्त हो जाए। औरंगजेब ने शहजादा आजम और मुअज्जम को बीजापुर का दमन करने का भार सौंपा। 1686 ई0 में आजम के बीजापुर दुर्ग की सेना पर 15 मास के घेरे का कोई प्रभाव नहीं पड़ा वे दुर्ग विजित नहीं कर सके। औरंगजेब ने बीजापुर के सुलतानों से माँग की कि वह मराठों के विरूद्ध मुगलों को सैनिक सहायता एवं रसद दे, मुगल सेना को अपने इलाके से गुजरने दे तथा मुगल विरोधी सरदार शरजा खाँ को हटा दे। सुलतान ने इन माँगों को नहीं माना और इससे आदिलशाह और मुगलों के बीच मतभेद उभर कर सामने आया। 1686 ई0 को स्वयं औरंगजेब ने बीजापुर की ओर प्रस्थान किया उसके व्यक्तिगत निर्देश में इस बार घेरा और भी मजबूत कर दिया। गया। सम्राट स्वयं सब कामों की देखभाल करता और मौके पर उपस्थित होकर अपअनी सेना को प्रोत्साहन देता था। दूसरी तरफ मराठों और गोलकुंडा ने भी बीजापुर को सैनिक सहायता भेजी। बीजापुर ने अंत में रसद की कमी के कारण निराश होकर सितम्बर 1686 ई0 को आत्मसमर्पण कर दिया। सुलतान सिकंदर आदिलशाह के लिए वार्शिक पेंशन एवं मनसब की व्यवस्था की गई उसने औरंगजेब की अधीनता स्वीकार कर ली। अंततः बीजापुर को मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया।

3.4 गोलकुंडा पर अधिकार

बीजापुर के पश्चात औरंगजेब की दृश्टि गोलकुंडा पर पड़ी, जिस पर 30 वर्श से कोई मुगल आक्रमण नहीं हुआ था। 1656 ई0 में ही औरंगजेब ने गोलकुंडा के सुलतान अब्दुल्ला कुतुबशाह के साथ संधि कर ली थी। कुतुबशाह ने मुगल अधीनता स्वीकार कर ली थी। इस संधि के बावजूद गोलकुंडा मराठों और बीजापुर की सहायता करता था। 1672 ई0 में कुतुबशाह की मृत्यु के पश्चात अब्दुलहसन कुतुबशाह नया सुलतान बना। उसके समय में शासन की बागडोर दो ब्राह्मण मंत्रियों मदन्ना और अखन्ना के हाथों में आ गई थी। अनेक अवसरों पर यह मुगलों के विरूद्ध मराठों और बीजापुर का साथ दिया करते थे। विश्वासघात का उसका अन्तिम कार्य, औरंगजेब की चेतावनी के बावजूद बीजापुर की सहायता के लिए चालीस हजार सैनिक भेजना था। इसलिए औरंगजेब गोलकुण्डा से नाराज था। गोलकुंडा

पर उसका वार्शिक कर भी बाकी था। साथ ही, औरंगजेब वहाँ की बहुमूल्य खनिज सम्पदा पर भी अधिकार करना चाहता था।

औरंगजेब ने शहजादा मुअज्जम को आक्रमण करने को भेजा। 1685 ई0 में मुअज्जम ने सुलतान के सेनापति को अपने पक्ष में कर लिया। मुअज्जम ने गोलकुंडा की राजधानी हैदराबाद पर अधिकार कर लिया और सुलतान को संधि के लिए विवश किया। सुलतान युद्ध का हर्जाना, वार्शिक कर, मालखेड़ और अन्य जीते गए इलाके औरंगजेब को देने का तैयार हो गया। मदन्ना ओर अखन्ना की हत्या कर दी गयी। सुलतान अबुल हसन ने भाग कर गोलकुण्डा के किले में शरण ली। 1687 ई0 में औरंगजेब ने स्वयं गोलकुण्डा का मजबूत घेरा डाला। दुर्ग को जीतने के लिए बारूद की सुरंगें लगाई गई। परन्तु इससे मुगल सेना का ही विनाश हुआ और कोई सफलता नहीं मिली। गोलकुण्डा का दुर्गरक्षक अब्दुलर्रज्जाक मुगलों से युद्ध करता हुआ मारा गया। औरंगजेब जब दुर्ग में प्रवेश नहीं कर सका तो उसने एक अफगान दुर्गरक्षक को रिश्वत देकर दुर्ग का फाटक खुलवा लिया एवं अंदर प्रवेश कर लिया। इस प्रकार 1687 ई0 में गोलकुण्डा पर मुगलों का अधिकार हो गया। सुल्तान को 50 हजार रूपया वार्शिक पेंशन देकर दौलताबाद के किले में कैद कर दिया गया। गोलकुण्डा को मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया इस अभियान में औरंगजेब को धन प्राप्त हुआ मगर गोलकुण्डा का पतन उसकी कठिनाईयों की शुरूआत ही थी।

3.5 मराठों के साथ संघर्श

दक्षिण में मराठों से औरंगजेब को भयंकर संघर्श करना पड़ा। मराठा राजाओं– शिवाजी (1640–80), शम्भाजी (1680–89) राजाराम (1689–1700) और उनकी विधवा ताराबाई (1700–1707) के विरूद्ध औरंगजेब को युद्ध करना पड़ा। अहमद नगर और बीजापुर राज्यों की आंतरिक दुर्बलता का लाभ उठाकर शाह जी भोसले ने अपनी शक्ति बढ़ा ली थी। उसके कार्यों को उसके पुत्र शिवाजी ने आगे बढ़ाया शिवाजी का उद्देश्य दक्षिण में मुगलों। का प्रसार रोकना और स्वतंत्र हिन्दूराज्य' की स्थापना करना था। मुगल और बीजापुर संघर्श का लाभ उठाकर उसने मुगल इलाकों पर आक्रमण करना एवं लूटना आरंभ किया कर दिया।

3.5.1 औरंगजेब और शिवाजी

मुगलों के साथ शिवाजी की पहली मुठभेड़ 1657 ई0 में हुई। इस समय औरंगजेब तथा उसकी सेना बीजापुर पर आक्रमण करने में लगी हुई थीं। फलस्वरूप शिवाजी ने अहमदनगर और जन्नार के मुगल जिलों पर हमला कर लूट लिया। उत्तराधिकार के युद्ध में व्यवस्त होने के कारण औरंगजेब ने उस भाग में अपने अफसरों को नयी सेना दी तथा शिवाजी पराजित हुआ और उसे संधि करनी पड़ी। औरंगजेब के उत्तर भारत में व्यवस्त होने का लाभ उठाकर शिवाजी ने कल्याण, शिवानी एवं महुली अनेक पहाड़ी दुर्गों पर अधिकार कर लिया। बीजापुर के सुल्तान ने शिवाजी की शक्ति का सदा के लिए नाश करने का निर्णय

किया। 1659 ई0 के प्रारम्भ में प्रमुख सरदार एवं सेनापति अफजल खाँ के अधीन एक विशाल सेना भेजी गयी लेकिन अफजल खाँ को परास्त कर उसका वध कर दिया। शिवाजी ने पन्हला, दक्षिण कोंकण और कोल्हापुर के अनेक स्थानों पर विजय प्राप्त की। 1660 ई0 में औरंगजेब ने दक्कन के सूबेदार शायस्ता खाँ को शिवाजी का प्रसार रोकने का आदेश दिया। उसने बीजापुर से समझौता कर शिवाजी पर आक्रमण कर दिया। पूना, चाकन और कल्याण पर मुगलों का अधिकार हो गया।

इससे शिवाजी की शक्ति को क्षति पहुँची। 1663 ई0 में शिवाजी ने पूना में शायस्ता खाँ के शिविर पर आक्रमण कर उसे घायल कर दिया तथा शाइस्ता खाँ का पुत्र अब्दुल फतह मारा गया। शिवाजी की धाक पुनः जम गयी। 1666 ई0 में शिवाजी ने सूरत के बंदरगाह को भी लूट लिया। बार–बार की इन पराजयों से दक्कन में मुगलों की प्रतिश्ठा और प्रभाव पर बहुत बुरा असर पड़ा। 1665 ई0 में औरंगजेब ने आमेर के राजा जय सिंह तथा दिलेर खाँ को बड़ी फौज के साथ शिवाजी के दमन का आदेश देकर भेजा। जयसिंह ने बीजापुर के सुलतान, शिवाजी के विरोधी मराठा सरदरों, जंजीरा के सीदियों और यूरोपियों को अपने पक्ष में मिला लिया तथा पुरंदर का घेरा डाल दिया। शिवाजी के रायगढ़ को भी घेर लिया गया। विवश होकर जून 1665 ई0 को जय सिंह के साथ शिवाजी ने पुरंदर की संधि कर ली। इसके अनुसार शिवाजी ने मुगलों को तेईस किले दे दिये और केवल बारह अपने पास रखे। बालाघाट के इलाके के बदले में शिवाजी ने 40 लाख हूण देना भी स्वीकार किया तथा मुगल अधीनता भी स्वीकार कर ली। जय सिंह के अनुरोध पर शिवाजी अपने पुत्र शम्भाजी के साथ औरंगजेब से मिलने आगरा पहुँचा, किंतु दरबार में उचित सम्मान नहीं मिलने पर उसने बादशाह पर वचन–भंग करने का आरोप लगाया। इस पर उसे नजरबंद कर लिया गया। परंतु वह कैद से अपने पुत्र के साथ भाग निकले एवं राजगढ़ पहुँच गए। शिवाजी ने तीन साल युद्ध नहीं किया और अपनी सेना को शक्तिशाली बनाया। औरंगजेब ने उसे 'राजा' की उपाधि और बरार में एक जागीर दी तथा उसके पुत्र शम्भाजी को पाँच हजारी सरदार के पद पर नियुक्त किया। परंतु 1670 ई0 में युद्ध पुनः आरम्भ हो गया। 1665 ई0 में मुगलों को समर्पित करीब–करीब उन सभी दुर्गों पर पुनः अधिकार प्राप्त कर लिया। 1670 ई0 सूरत को उसने दूसरी बार लूटा। मुगल प्रान्तों पर उसने साहसपूर्ण आक्रमण कर परास्त किया। औरंगजेब के उत्तर–पश्चिम में उलझे रहने के कारण शिवाजी अपनी शक्ति की पराकाश्ठा पर पहुँच गया। 1674 ई0 में रायगढ़ में शिवाजी ने अपना राज्याभिशेक किया। औरंगजेब जो इस समय सीमांत प्रान्तों में उलझा हुआ था चाह कर भी वह शिवाजी का दमन नहीं कर सका। परन्तु दुर्भाग्यवश इस स्वतन्त्रता सेनानी का 1680 ई0 को स्वर्गवास हो गया।

3.5.2 औरंगजेब व शम्भाजी

शिवाजी की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र शम्भाजी गद्दी पर बैठा। उसने औरंगजेब के विद्रोही पुत्र अकबर को अपने यहाँ शरण दी थी। फलतः औरंगजेब मराठों और शाहजादा

अकबर की मैत्री से कुपित हो उठा। 1689 ई0 में मुगल सेना ने शम्भाजी के गुप्त अड्डे संगमेश्वर पर आक्रमण कर शम्भाजी और उसके मंत्री कवि–कलश को गिरफ्तार कर लिया गया। औरंगजेब ने बहादुरगढ में उसे विद्रोही और काफ़िर ठहरा कर उनकी हत्या करवा दी। औरंगजेब की इस राजनैतिक गलती ने मराठों को अपना संघर्श और तेज करने का मौका दे दिया। मुगलों ने बहुत से मराठा दुर्गों पर अधिकार कर मराठा राजधानी रायगढ़ पर भी घेरा डाल लिया। शम्भाजी का छोटा भाई राजाराम भाग कर कर्नाटक के जिंजी पहुँचा।

3.5.3 औरंगजेब और राजाराम

शिवाजी के दूसरे पुत्र राजाराम ने औरंगजेब से संघर्श जारी रखा और जिंजी को अपना केन्द्र बनाया। औरंगजेब ने जिंजी में घेरा डाल दिया। मराठों ने राजाराम के नेतृत्व में मुगलों के विरूद्ध स्वतंत्रता युद्ध आरम्भ कर दिया। मराठों का विद्रोह पश्चिम से लेकर पूर्वी तट तक फैल गया। मराठों ने मुगलों के विरूद्ध छापामार युद्ध आरम्भ कर दिया एवं मुगल क्षेत्रों में लूट–पाट मचा दी। 1698 ई0 में जिंजी पर मुगलों का अधिकार हो गया। लेकिन राजाराम दुर्ग से निकल भागा और सतारा जा पहुँचा वहाँ उसने एक प्रबल सेना इकट्ठी कर उत्तरी दक्कन में पुनः संघर्श आरम्भ कर दिया, जहाँ औरंगजेब ने अपनी सेना का जमाव कर रहता था। शाहीदल ने दिसम्बर 1699 ई0 में सतारा के दुर्ग पर घेरा दिया, परन्तु मराठों ने वीरता पूर्वक इसकी प्रतिरक्षा। अन्त में राजाराम की मृत्यु (12 मार्च, 1707 ई0) के पश्चात उसके मंत्री परशुराम ने कुछ शर्तों पर इसे समर्पित कर दिया। अब बादशाह स्वयं मराठों के एक के बाद दूसरे किले पर अधिकार करने लगा।

3.5.4 औरंगजेब और ताराबाई

राजाराम की मृत्यु के पश्चात उसकी विधवा ताराबाई ने, जो अद्वितीय उत्साह वाली महिला थी, इस संकट पूर्ण समय में अपने अल्प वयस्क पुत्र शिवाजी तृतीय की संरक्षिका के रूप में मराठा राश्ट्र की बागडोर संभाली। मराठों ने अनेक दुर्ग पर अधिकार कर लिया। औरंगजेब उनका दमन करने में विफल रहा। बाध्य होकर उसने मराठों से संधि वार्ता आरंभ कर दी। मराठों ने शाहू को राजा बनाने उसे छः क्षेत्रों से चौथे और सरदेशमुखी वसूलने का अधिकार देने की माँग की। 1703 में औरंगजेब शंभाजी के पुत्र शाहू को रिहा करने को तैयार हो गया, लेकिन बाद में मराठों के उद्देशों के प्रति आशंकित होकर उसने इसे अस्वीकार कर दिया। 1706 में औरंगजेब को विश्वास हो गया कि मराठों के सभी किलों पर कब्जा करना उसके बस के बाहर की बात है। उसने धीरे–धीरे अहमदाबाद की ओर लौटना शुरू किया पर रास्ते में मराठों के आक्रमण होते रहे मार्च 1707 ई0 औरंगाबाद में ही उसकी मृत्यु हो गई।

3.5 औरंगजेब : दक्षिण नीति के परिणाम

1682 में दक्कन में अपने आगमन से लेकर 1689 ई0 में शम्भाजी को मृत्यु दण्ड देने तक, दक्षिण में औरंगजेब का प्रवास बहुत अनुकूल सिद्ध हुआ। इन सात वर्शों में उसने बीजापुर और गोलकुण्डा का मुगल साम्राज्य में विलय कर लिया, शिवाजी के पुत्र और उत्तराधिकारी शम्भाजी को पकड़कर मृत्युदण्ड दिया गया और शम्भाजी के किशोर पुत्र शाहू को बन्दी बना लिया गया। इन सफलताओं के परिणाम स्वरूप ''1689 ई0 में ऐसा प्रतीत हो रहा था कि औरंगजेब दक्कन में जो कुछ चाहता था, वह सब कुछ पा चुका है, परन्तु वस्तुस्थिति यह थी कि सब कुछ खो चुका था। यह (सफलताएँ) उसके अन्त की शुरूआत थी। मुगल साम्राज्य ने अब इतना विशाल आकार ग्रहण कर लिया था कि उस पर केन्द्र द्वारा शासन नहीं किया जा सकता था। दक्कन में चलने वाले अनन्त युद्धों के परिणामस्वरूप उसका खजाना खाली हो चुका था, सरकार दिवालिया हो गई थी और बकाया वेतन न मिल पाने के कारण भूखों मर रहे सैनिकों ने सैनिक विद्रोह करने प्रारम्भ कर दिये थे। औरंगजेब की मृत्यु के समय दक्कन में मुगलों की स्थिति पहले से कहीं अधिक संकटापन्न और नाजुक हो गई थी।

3.6 औरंगजेब की दक्षिण नीति : विफलता के कारण

औरंगजेब की दक्षिण नीति बिल्कुल असफल रही। डॉ0 स्मिथ महोदय ने लिखा है, ''दक्षिण भारत उसकी प्रतिश्ठा तथा उसके शरीर की नहीं, बल्कि उसके साम्राज्य की भी समाधि सिद्ध हुआ।'' यदुनाथ सरकार ने लिखा है, ''जिस प्रकार स्पेन के नासूर ने नैपोलियन का विनाश कर दिया, उसी प्रकार दक्षिण के नासूर ने औरंगजेब का विनाश कर दिया।'' औरंगजेब ने 25 वर्श तक दक्षिण में लड़ाई जारी रखी थी। ऐसा प्रतीत होता था कि मुगलों ने दक्षिण में अपने उद्देश्य प्राप्त कर लिये थे लेकिन जहाँ मुगल साम्राज्य इस विस्तार से अपने चर्मोत्कर्श तक पहुँच गया वहीं उसके पतन का मार्ग भी इससे प्रशस्त हो गया। औरंगजेब की इस नीति की विफलता के निम्नलिखित कारण उत्तरदायी हैं।

- अकबर की सीमित विस्तार की नीति का औरंगजेब द्वारा परित्याग ही मुगल साम्राज्य के पतन की ओर पहला कदम था। उसने दक्षिण अभियान में राज्य की सीमाएं इतनी विस्तृत कर दी थीं कि एक ही स्थान से उसका प्रशासन चलाना असंभव हो गया था।

- बीजापुर और गोलकुण्डा का साम्राज्य में सम्मिलित किया जाना भी गलत था। इसके कारण मराठों से उसका सीधा संघर्श हुआ जो दक्षिण नीति की असफलता का प्रमुख कारण बना।

- औरंगजेब ने मराठों की समस्या के समाधान में भी दूरदर्शिता से काम नहीं लिया। उसने मराठों की शक्ति का सही अनुमान नहीं लगाया न ही वह मराठों के उत्कर्ष के सही स्वरूप को समझ सका। मुगलों के खिलाफ दक्कन की एकमात्र ढाल मराठे

थे और दकनी राज्य उसे खोने को तैयार नहीं थे। औरंगजेब यदि मराठों के साथ उदारता एवं सहयोग की नीति अपनाता तो मुगल राज्य दक्षिण में स्थायी रूप से सुदृढता प्राप्त कर सकता था।

- दक्षिण की भौगोलिक परिस्थिति छापामार युद्ध के लिए अत्यन्त उपयुक्त थी। मराठे इस क्षेत्र के निवासी होने के कारण इन परिस्थितियों का पूरा लाभ उठाने की स्थिति में थे जो मुगलों के लिए सम्भव नहीं था। अतः अधिक सैनिक साधनों से सम्पन्न होने पर भी और औरंगजेब के कठिन परिश्रम के बाद भी मराठों का दमन सम्भव नहीं था।

- औरंगजेब की धार्मिक नीति भी उसकी विफलता का कारण बनीं। उसने हिन्दुओं पर बहुत अत्याचार किये थे मराठे इससे बहुत असंतुश्ट थे। औरंगजेब ने उनको हर प्रकार से नीचा दिखाने और अपमानित करने की नीति अपनाई थी। उसने शिया मुसलमानों के साथ भी धार्मिक असहिश्णुता की नीति अपनाई थी जो उसकी विफलता में सहायक हुई।

- 1689 ई0 में शंभाजी को पराजित कर उसे विद्रोही और काफ़िर ठहरा कर उसकी हत्या की गयी और उसके बेटे शाहू को कैद कर लिया। यह औरंगजेब की निस्संदेह एक बड़ी राजनैतिक गलती थी। मराठों से समझौता कर औरंगजेब बीजापुर तथा गोलकुण्डा पर अपनी विजय को पक्का कर सकता था। किसी एक शक्तिशाली नेता के आभाव में मराठों का विद्रोह एक जन–विद्रोह में बदल गया जिस पर औरंगजेब अपने अथक प्रयास के बावजूद विजय नहीं प्राप्त कर सका।

- मुगलों द्वारा की गई संधियों और उनके दिये वचनों पर से दक्कनी राज्यों का भरोसा हमेशा के लिए उठ गया। 1703 ई0 में औरंगजेब समझौता लगभग कर चुका था लेकिन अन्तिम समय में वह शाहू और मराठा सरदारों पर विश्वास करने के लिए अपने मन को तैयार नहीं कर सका।

- छोटे–छोटे और बड़े युद्धों के निरन्तर होते रहने के कारण सेना और उसके नेता धीरे–धीरे थकते जा रहे थे और उनमें असंतोश भड़कने लगा था आखिर मुगल खेमें में हार की भावना आ गई। बहुत से जागीरदारों ने मराठों से गुप्त समझौते कर लिए और वे इस शर्त पर उन्हें चौथ देने को राजी हो गए कि उनकी जागीर में कोई उपद्रव नहीं किया जाएगा। बाढ़ो, बीमारियों और मराठा छापामारों से मुगल सेना का भयावह विनाश हुआ।

- औरंगजेब के व्यक्तिगत दोश भी थे जैसे–उसका शनकी मिजाज और संकुचित तथा भावना–शून्य स्वभाव जो उसकी विफलता में सहायक बना। सैनिक गुणों में वह अत्यन्त प्रवीण था तथापि वह भारत के शासक के रूप में असफल सिद्ध हुआ।

- दक्षिण से बड़ी संख्या में मुगल प्रशासन में प्रवेश करने वाले मनसबदारों के कारण जागीरदारी व्यवस्था का संकट और गम्भीर हुआ। दक्षिण की समस्या में सम्राट की व्यवस्तता ने उत्तर भारत में भी साम्राज्य के विघटन को प्रभावित किया। अतः औरंगजेब की दक्षिण नीति असफल सिद्ध हुई।

3.7 बोध प्रश्न

1) निम्नलिखित कथनों को पढ़कर ठीक (√) एवं गलत (×) का चिन्ह लगाओ।

   i) औरंगजेब ने शिवाजी के पुत्र राजाराम का वध करवा दिया था। ( )

   ii) बीजापुर और गोलकुण्डा के शासक शिया मुसलमान थे। ( )

   iii) राजाराम की विधवा ताराबाई ने मराठों का नेतृत्व संभाला। ( )

   iv) बीजापुर के शासक सिकंदर आदिलशाह ने आत्मसमर्पण कर दिया था। ( )

2) औरंगजेब की दक्षिण नीति की विफलता के क्या कारण थे। 100 शब्दों में उत्तर दें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3.8 सारांश

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि औरंगजेब की दक्षिण नीति ऊपरी तौर पर सफल दिखायी देती है इससे मुगल साम्राज्य चरम विकास हो गया। लेकिन वास्तव में औरंगजेब को दक्षिण अभियानों से बेहिसाब जन धन की हानि उठानी पड़ी। दक्षिण की प्रादेशिक शक्ति जो मराठों में निहित थी, ने सम्राट एवं साम्राज्य की प्रतिश्ठा को न केवल मिट्टी में मिला दिया, वरन साम्राज्य के विभिन्न भागों में भी विद्रोहात्मक प्रवृत्ति को प्रेरणा दी, जिसने कि शनैः शनैः साम्राज्य को दुर्बल बनाकर पतनोन्मुख कर दिया। औरंगजेब के लिए दक्षिण की

भूमि उसकी महत्वाकांक्षा एवं उसक स्वप्न था। उसने अपने जीवन के 25 वर्श अपनी इस महत्वाकांक्षा को पूप्र करने में व्यतीत किये, परन्तु उसका स्वप्न अधूरा भी रहा।

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1) i) × ii) √ iii) √ iv) √

2) भाग 3.7 को देखिये।

3.10 इस खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

1. यदुनाथ सरकार; हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, भाग–1–2 कलकत्ता 1925
2. एस0के0 शकानी; हिस्ट्री ऑफ दी मेडिवल डेकन भाग–1 हैदराबाद 1973
3. वाचस्पति गौरील; मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण
4. राधेश्याम; औरंगजेब, इण्डिया बुक एजेन्सी, इलाहाबाद

इकाई–4

उत्तरवर्ती मुगल शासक : नादिरशाह का आक्रमण

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 उत्तरवर्ती मुगल शासक

- 4.2.1 बहादुरशाह प्रथम (1707–1712)
- 4.2.2 जहाँदार शाह (1712–1713)
- 4.2.3 फर्रूखसियर (1713–1719)
- 4.2.4 मुहम्मदशाह (1719–1748)
- 4.2.5 अहमदशाह (1748–1754)
- 4.2.6 शाह आलम द्वितीय (1759–1806)

4.3. नादिरशाह का आक्रमण

- 4.3.1 परिचय
- 4.3.2 नादिशाह के आक्रमण के कारण
- 4.3.3 नादिरशाह का आक्रमण
- 4.4.4 नादिरशाह के आक्रमण का प्रभाव

4.4. बोध प्रश्न

4.5 सारांश

4.6 बोध प्रश्न के उत्तर

4.7 सीायक ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे कि :–

- उत्तरवर्ती मुगल साम्राज्य की वास्तविक स्थिति क्या थी।
- उत्तरवर्ती मुगल शासकों के बारे में।
- नादिरशाह के आक्रमण और मुगल साम्राज्य पर उसके प्रभाव से परिचित हो पायेंगे।

4.1 प्रस्तावना

1707 ई0 में औरंगजेब की मौत के समय मुगल प्रशासन काफी कुशल तथा मुगल

फौज काफी ताकतवर थी, वैभव की दृश्टि से मुगल साम्राज्य चरमोत्कर्ष पर था। 1707 ई0 में मुगल साम्राज्य में 21 प्रान्त थे लेकिन 1707 ई0 के पश्चात इनमें अलगाव के स्पश्ट चिन्ह दिखाई दे रहे थे। बाद की अर्धशताब्दी में बहुत सी दिल दहला देने वाली घटनाएँ हुई। साम्राज्य विस्तार, आचरण और प्रशासन की दृश्टि से उत्तरवर्ती मुगलों और महान मुगलों के बीच कोई तुलना नहीं की जा सकती। उनके कमजोर उत्तराधिकारियों में बहादुर शाह प्रथम से लेकर शाह आलम द्वितीय तक ग्यारह शासकों ने शासन किया। इस इकाई में हम उत्तरवर्ती मुगल शासकों और नादिर शाह के आक्रमण की जानकारी प्राप्त करेगें।

4.2.1 बहादुरशाह प्रथम (1707–12)

औरंगजेब का पुत्र मुअज्जम अपने भाईयों आजम तथा कामबख्श को उत्तराधिकार के युद्ध में परास्त कर मुगल राज सिंहासन पर बहादुर शाह के नाम से बैठा। वह उत्तरवर्ती मुगलों में पहला और अन्तिम शासक था जिसने वास्तविक प्रभुसत्ता का उपयोग किया। औरंगजेब के समय से ही मराठे राजपूत और सिख मुगल विरोधी नीतियाँ अपना रहे थे जिसके कारण बहादुरशाह के समय से ही मुगलों का विघटन आरम्भ हो गया। बहादुरशाह प्रथम विद्वान, आत्मगौरव से परिपूर्ण और योग्य था। उसने समझौते और मेल–मिलाप की नीति अपनाई। जोधपुर के राजा अजीत सिंह ने अपने को स्वतंत्र शासक घोशित करके मुगल प्रदेश पर आक्रमण कर दिया था। बहादुरशाह ने आमेर की गद्दी पर जय सिंह को हटाकर उसके भाई विजय सिंह को बैठाने और अजीत सिंह को मुगल सत्ता की अधीनता स्वीकार करने को मजबूर किया जिसका कड़ा प्रतिरोध हुआ। फलतः बहादुरशाह ने समझौता कर अजीत सिंह को जोधपुर का शासक स्वीकार कर लिया और आमेर के शासक जय सिंह द्वितीय और दुर्गादास से भी मैत्री स्थापित की गई। मराठा सरदारों के प्रति उसकी नीति ऊपरी तोर पर ही मेल–मिलाप की थी। रायगढ़ के पतन के बाद मुगल कैद में रह रहे शम्भाजी के पुत्र शाहू को रिहा कर दिया उसने दकन की सरदेशमुखी दे दी मगर चौथ का अधिकार नहीं दिया। साहू के पहुँचते ही मराठा संघ दो दलों में विभाजित हो गया और उनका गृह–युद्ध प्रारम्भ हो गया। बहादुरशाह ने गुरू गोविन्द सिंह के साथ संधि कर और एक बड़ा मनसब देकर विद्रोही सिखों के साथ मेल–मिलाप करने की कोशिश की थी। लेकिन सिखों के नेता बन्दा बैरागी (सच्चा बादशाह) ने पंजाब में विद्रोह कर दिया और सरहिन्द को लूट कर उस पर अधिकार कर लिया। बहादुर शाह ने सिखों के विरूद्ध लड़ाई की बागडोर स्वयं संभाली और बन्दा बैरागी को कई स्थानों पर परास्त किया। विवश होकर उसे जम्मू की पहाड़ियों में शरण लेनी पड़ी। सिखों को न तो कुचला जा सका और न ही उनके साथ समझौता हो सका। 1712 ई0 में बहादुरशाह की मृत्यु हो जाने के कारण मुगलों का सिखों के विरूद्ध कार्य शिथिल हो गया।

बहादुरशाह जागीरों और पदोनतियाँ देने में उदार था जिसके कारण उसने खजाना खाली कर दिया था। वह ''शाहे बेखबर' के रूप में मुगल इतिहासकारों द्वारा उल्लखित किया गया।

4.2.2 जहाँदार शाह (1712–13)

बहादुरशाह की मृत्यु के पश्चात उसके पुत्रों, जहाँदार शाह, अजीम उसशान, रफी–उस–शान तथा जहाँनशाह में उत्तराधिकार का युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस गृहयुद्ध में जहाँदार शाह विजयी रहा क्योंकि उसे शक्तिशाली सामंत जुल्फिकार खाँ का समर्थन प्राप्त था। बादशाह ने वजीर के रूप में जुल्फिकार खाँ को राज्य के सर्वोच्च पद पर नियुक्त किया। जुल्फिकार खाँ ने जजिया को समाप्त किया, आमेर के राजा जय सिंह को मिर्जा राजा सवाई की पदवी दी गयी, मारवाड़ के राजा अजीत सिंह को महाराज की पदवी और गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया गया। जागीरों और ओहदों पर पाबंदी लगायी। इजारा को बढ़ावा दिया। जहाँदार शाह को अजीमुशान के विद्रोह का सामना करना पड़ा। पटना में उसने अपने–आपको सम्राट घोशित कर दिया उसकी सहायता पटना के नायब सूबेदार हुसैन अलीखाँ और उसका भाई जो इलाहाबाद का नायब अब्दुला खाँ (सैयद बन्धुओं) ने की। फर्रूखसियर की सेना ने आगरा में जहाँदार शाह को परास्त कर दिल्ली के जेल में उसकी हत्या कर दी गयी। उसका शासन काल केवल दस महीनों का था। उसका पतन मुख्यतः उसकी अयोग्यता के कारण हुआ। उसके शासन में उच्चतम अधिकारी तूरानी, ईरानी ओर हिन्दूस्तानी गुट में विभाजित हो गया।

4.2.3 फर्रूखसियर (1713–1719)

फर्रूखसियर सैयदबंधुओं की सहायता से गद्दी पर बैठा था अतः उसने सैयद अब्दुला खाँ को वजीर और हुसैन अली खाँ को मीरबख्शी के पद पर नियुक्त किया। फर्रूखसियर सुन्दर, कायर, अविवेकी तथा चरित्रहीन था। दरबारियों का प्रभुत्व बढ़ा और गुटबाजी और शड़यंत्र के कारण बादशाह की प्रतिश्ठा में कमी आयी। फर्रूखसियर योग्य से योग्य मंत्रियों पर विश्वास नहीं करता था और अपने मंत्रियों के विरूद्ध शड़यन्त्र रचने लगता था। बादशाह उसके वजीर तथा मीरबख्शी के बीच सत्ता के लिए एक लंबा संघर्श आरंभ हो गया। अपनी कमजोरियों के बावजूद फर्रूखसियर सैयद बंधुओं को बेरोकटोक काम करने देने के लिए तैयार नहीं था। उसके शासनकाल की प्रमुख घटनाएँ थीं मेवाड़ के शासक अजीत सिंह तथा सिख नेता बंदा के विरूद्ध सैनिक अभियान। मारवाड़ के राजा अजीत सिंह जिसने बहादुरशाह के समक्ष आत्म समर्पण कर दिया था पुनः स्वतंत्र हो गया और अजमेर पर अधिकार कर लिया। सैयद हुसैन अली ने अजीत सिंह को संधि के लिए विवश किया और उसने अपने पुत्र अभय सिंह को मुगल दरबार में जोड़ना स्वीकार किया। इसी के साथ बंदा के विरूद्ध सैनिक अभियान कर उसे बंदी बना लिया गया, उसका तथा उसके पुत्र का वध कर दिया गया। सैयद भाईयों के प्रयास से जाट चूड़ामन से समझौता कर उसे मुगल अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। जजिया समाप्त कर दिया गया तथा तीर्थयात्री कर हटा दिया गया। 1719 में हुसैन अली ने पेशवा बालाजी विश्वनाथ के साथ समझौता कर छः प्रांतों का चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार दिया। सेयद बंधुओं ने बगावतों को दबाने और साम्राज्य

को प्रशासनिक बिखराव से बचाने के जोरदार प्रयास किये लेकिन वे विफल रहे। बादशाह उनके विरूद्ध मूर्खतापूर्ण एवं विश्वासघाती चालें चलता रहा लेकिन सफल नहीं हुआ। अन्त में 1719 में सैयद भाईयों ने उसकी हत्या कर दी। फर्रूखसियर के स्थान पर सैयद भाइयों ने क्रमशः रफीउद दरजात तथा रफी उद्दौला (शाहजहाँ द्वितीय) को क्रमशः गद्दी पर बैठाया पर ये नाम मात्र के शासक थे। दोनों की बीमारी से मृत्यु हो गयी थी।

4.2.4 मुहम्मदशाह (1719–48)

सैयद भाईयों ने जहॉनशाह के पुत्र रौशन अख्तर को मुहम्मदशाह नाम से सितम्बर 1719 ई0 को गद्दी पर बैठाया जो अत्यन्त अयोग्य तथा दुर्बल था। अतः सारी शक्ति सैय्यद भाइयों ने अपने ही हाथ में रखी। लगभग एक वर्श से अधिक समय तक अपने पूर्ववर्ती शासकों के समान सैयद बन्धुओं के हाथों की कठपुतली की तरह रहा। मुहम्मदशाह सैयदबंधुओं के प्रभाव से मुक्त होना चाहता था। मालवा के सूबेदार निजाम–उल–मुल्क और मुहम्मद अमीन खां के नेतृत्व में सामंतों का शक्तिशाली गुट उनके खिलाफ शड़यंत्र करने लगा तथा उन्हें सम्राट का समर्थन मिला। 1720 में छोटे भाई हुसैन अली खां को धोखे से मारने में सफल हो गए। अब्दुला खां ने मुकाबला करने की कोशिश की मगर आगरा के पास उसे हरा कर बन्दी बना लिया गया बाद में उसे जहर देकर मार डाला गया। सैयद बंधुओं के पतन के बाद दरबार में शड़यन्त्र की बाढ़ आ गई और मुगल साम्राज्य का शीघ्रता से पतन हो गया। सैयद बंधुओं ने सर्वशक्तिमान वज़ीर पद के सिद्धान्त का सृजन किया जिसके अधीन सम्राट वजीर के हाथों की कठपुतली बन कर रह गया। मुगल शासन व्यवस्था में यह नवीन परिवर्तन मुहम्मद शाह के शासनकाल में एक स्थापित परम्परा बन गयी। सैयद बंधुओं के बाद उसका पहला वजीर मुहम्मद अमीन खाँ था। मुहम्मद अमीन खाँ की मृत्यु के पश्चात 1721 में यह पद निज़ाम–उल–मुल्क को सौपा गया जिसने एक वर्श पश्चात कार्यभार संभाला लेकिन कुछ समय पश्चात निजाम वापस दकन चला गया। हैदराबाद में उसने स्वतंत्र राज्य निजाम शाही की स्थापना की। मुर्शिद कुली खाँ ने बंगाल में सआदत खाँ ने अवध में अपनी स्वतंत्रता घोशित की। मालवा और गुजरात में मराठों के आक्रमण के कारण यहाँ से मुगल सत्ता का पतन हो गया। राजस्थान, बुन्देलखण्ड पर मराठों का अधिकार हो गया। जाटों, सिखों, रूहेलों ने अपनी शक्ति बढ़ा ली। इसी के समय में नादिरशाह अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण कर मुगल साम्राज्य के पतन की गति को तीव्र कर दिया। मुहम्मद शाह असंयत आचरण वाला सर्वाधिक विलासप्रिय शासक था और इसलिए उसको मुहम्मद शहा रंगीला कहा जाता था। 1748 ई0 में मुहम्मद शाह की मृत्यु हो गयी और उसका पुत्र अहमदशाह सिंहासन पर बैठा।

4.2.5 अहमदशाह (1748–54)

अहमदशाह के शासन के समय मुगल सत्ता अत्यंत संकुचित हो गई। आंतरिक

प्रशासन संकुचित हो गया, दरबार में गुटबाजी और दलबंदी बढ़ गई। ईरानी और तुरानी सरदारों के आपसी संघर्श ने स्थिति और दयनीय कर दी। अवध के नवाब सफदर जंग को बादशाह ने वज़ीर के पद से हटाकर इतिज़म–उद–दौला को वजीर बनाया जिसने अहमदशाह को गद्दी से उतार दिया और उसके स्थान पर जहॉदारशाह के पुत्र आलमगीर द्वितीय को राज्य सिंहासन पर बैठाया। अहमदशाह के शासन काल में अहमदशाह अब्दाली का दूसरा आक्रमण हुआ तथा उसने पंजाब के सूबेदार को 14 हजार रूपये वार्शिक कर देने को बाध्य।) आलमगीर (1754–59) द्वितीय के शासन काल में अहमदशाह अब्दाली ने तीसरा आक्रमण किया और लूट–पाट कर वापस चला गया। 1759 में आलमगीर द्वितीय की उसके वजीर इमाद–उल–मुल्क ने हत्या कर दी।

4.2.6 शाहआलम द्वितीय (1759–1806)

आलमगीर के पुत्र अलीगौहर ने शाहआलम द्वितीय की उपाधि धारण कर बिहार में खुद को बादशाह घोशित किया। वहीं दूसरी तरफ दिल्ली में अमीरों ने कामबख्श के पौत्र मुही–उल–मिल्तर को शाहजहाँ द्वितीय के नाम से सिंहासन पर बैठाया। शाहआलम द्वितीय को 1772 ई0 तक निर्वासित के रूप में बिताने पड़े। अहमदशाह अब्दाली का पाँचवा आक्रमण इसी समय हुआ। 1761 पानीपत के युद्ध में मराठे अब्दाली से पराजित हुए। अब्दाली ने शाहआलम को दिल्ली का सम्राट स्वीकार कर लिया। 1764 बक्सर के युद्ध में शाहआलम अंग्रेजों से पराजित हुआ। 1765 में इलाहाबाद की संधि के अनुसार अंग्रेजों को बिहार, पंजाब और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त हुई। अंग्रेजों ने शाह आलम को कड़ा और 26 लाख पेंशन दी। 1771 से वह अंग्रेजों के संरक्षण में रहा 1806 में उसकी मृत्यु हो गयी।

शाहआलम की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र अकबर द्वितीय 1837 तक अंग्रेजों का पेंशन भोक्ता बना रहा। 1837 में बहादुरशाह द्वितीय जो अकबर का पुत्र था सिंहासन पर बैठा। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में उसने क्रांतिकारियों का नेतृत्व ग्रहण किया था। क्रान्ति के असफल हो जाने पर अंग्रेजों ने उसे सिंहासन से उतार दिया और उसको काले पानी दण्ड देकर रंगून भेज दिया जहाँ 1866 ई0 में उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार मुगल साम्राज्य का सदैव के लिए अंत हो गया।

4.3.1 परिचय

उत्तरवर्ती मुगलों के शासनकाल में जब मुगल साम्राज्य धीरे–धीरे अपने गौरव को खोता जा रहा था, उस समय पश्चिमोत्तर सीमा की सुरक्षा की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया। इसका लाभ उठाकर अफगानों ने भारत पर आक्रमण आरंभ कर दिया। यद्यपि इन आक्रमणों का उद्देश्य भारत से धन लूटना ही था तथापि पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य पर यह आक्रमण विनाशकारी हुए। अकबर से औरंगजेब तक सभी महान मुगल शासक अफगान कबालों पर नियन्त्रण बनाए रखने में सफल रहे थे। लेकिन केन्द्रिय शासन के कमजोर होने

पर, ईरानी साहसी खुराशानी तुर्क शासक नादिरशाह ने मुगल साम्राज्य पर हमला कर दिया। नादिरशाह जो इतिहास में ''ईरान के नेपोलियन'' के नाम से प्रसिद्ध है। उसने अपनी शक्ति के बल पर फारस के शाह तहमास्य की मृत्यु के पश्चात राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। 1736 ई0 में वह स्वयं फारस का शासक बन बैठा। उसने अफगानियों के विरूद्ध संघर्श आरंभ किया।

4.3.2 नादिरशाह के आक्रमण के कारण

नादिरशाह एक महत्वाकांक्षी शासक था और अपनी सत्ता का विस्तार करना चाहता था। भारत की राजनीतिक स्थिति अत्यंत अशांत थी मुगल साम्राज्य छिन्न–भिन्न हो रहा था अतः नादिरशाह को आक्रमण के लिए उचित अवसर सुलभ था। नादिरशाह ने इस स्थिति से लाभ उठाने की योजना बनाई। नादिरशाह ने भारत के पास अपार धन सम्पत्ति के बारे में सुन रखा था और उस धन को प्राप्त करने की लालसा भी उसके आक्रमण का एक महत्वपूर्ण कारण था। नादिरशाह के आक्रमण का तात्कालिक कारण अफगानियों को दण्ड देना था जो भाग कर भारत आ रहे थे। नादिरशाह द्वारा मुगल बादशाह मुहम्मद शाह के पास क्रमशः दो दूत इस प्रार्थना के साथ दिल्ली भेजे कि वो अफगान शरणार्थियों को अपने देश में शरण न दे। 1738 ई0 में नादिरशाह ने कंधार ओर गजनी पर अधिकार कर लिया। नादिरशाह ने मुहम्मद शाह के पास तीसरा दूत भेजा लेकिन मुहम्मदशाह उसे एक साल तक अपने पास रोके रहा और उसका कोई उत्तर देना उचित नहीं समझा। क्षुब्ध होकर नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण को आगे कर दिया।

4.3.3 नादिरशाह का आक्रमण

नादिरशाह ने काबुल का घेरा डालकर उस पर अधिकार कर लिया तत्पश्चात जमरूद, पेशावर पर नियुक्त मुगल सेना का विनाश करता हुआ पंजाब पर हमला करने के लिए आगे बढ़ा। पंजाब के सूबेदार जकरिया खान को दिल्ली दरबार से कोई सहायता नहीं मिली अतः उसने आत्मसर्मपण कर दिया और पूरे पंजाब पर उसका अधिकार हो गया। 27 दिसम्बर को उसने अटक के पास सिन्धु को पार कर लाहौर के सूबेदार को हराया। जब नादिर शाह ने दिल्ली की ओर तेजी से बढ़ना शुरू किया तो मुगल सम्राट ने आक्रमणकारी को रोकने के लिए निज़ाम–उल–मुल्क, कमरूद्दीन खाँ और खान–ए–दौरा के नेतृत्व में सेना को भेजा। बाद में उसके साथ सआदत खाँ भी शामिल हो गया।

नादिरशाह को जब ज्ञात हुआ कि मुहम्मद शाह उसका सामना करने के लिए आ रहा है तो उसने करनाल के पास डेरा डाल लिया। मुहम्मदशाह स्वयं एक बड़ी सेना लेकर करनाल पहुँचा और वहाँ अपने शिविर के आस–पास खाईं का घेरा बना लिया। अवध के सूबेदार बुरहान–उल–मुल्क बादशाह की मद्द के लिए करनाल आया लेकिन उसके पीछे आने वाली साजो सामान की गड़ियों पर ईरानियों ने हमला कर दिया। जिसके कारण उसे

वापस लौटना पड़ा। फरवरी 1739 में करनाल का युद्ध हुआ। खान दौरान ने बुरहान मुल्क की सहायता की। खान दौरान युद्ध में मारा गया बुरहान–उल–मुल्क कैद कर लिया गया। वास्तविक युद्ध केवल तीन घण्टे तक ही चला, जिसमें मुगल सेना की भयंकर पराजय हुई। निजाम–उल–मुल्क ने आक्रमणकारी नादिरशाह को बादशाह को युद्ध के हर्जाने के रूप में 2 करोड़ देना स्वीकार करवा लिया।

अवध के नवाब बुरहान मुल्क ने नादिरशाह को 2 करोड़ की जगह 20 करोड़ की माँग करने की सलाह दी तथा सम्राट मुहम्मदशाह और निज़ाम को बन्दी बना ले वे दिल्ली की ओर कूच करे और शाही राजधानी में संग्रहीत अपार खजाने को अपने कब्जे में ले ले। नादिरशाह ने इस सुझाव को स्वीकार कर लिया। 20 मार्च 1739 ई0 को दिल्ली में प्रवेश किया। मुगल बादशाह मुहम्मदशाह ने दिल्ली में नादिरशाह का भव्य स्वागत किया और बादशाह स्वयं उसकी खिदमत में लगा रहा। दिल्ली की हर मस्जिद में नादिरशाह के नाम का खुतबा पढ़ा गया। इसी बीच दिल्ली में एक दुर्घटना घटी 22 मार्च को दिल्ली के कुछ नागरिकों ने नादिर के कुछ सैनिकों का वध कर दिया। दिल्ली में यह अफवाह फैल गयी कि नादिरशाह मारा गया। फलतः क्रोधित होकर नादिर ने कत्लेआम की आज्ञा दे दी। ईरानी सैनिक नागरिकों पर टूट पड़े हजारों निर्दोश व्यक्ति निर्ममतापूर्वक कत्ल कर दिए गए। शहर में लूट–खसोट का बाजार गर्म हो गया, चाँदनी चौक और निकटवर्ती स्थान जलाकर राख के ढेर में बदल दिए गये। कत्ल–ए–आम सुबह आठ बजे से अपराहन तीन बजे तक चला। आठ घण्टे तक चलने वाले इस कत्लेआम में हजारों की संख्या में लोग मारे गये। मुहम्मद शाह के हस्तक्षेप और प्रार्थना पर नादिरशाह ने कत्लआम बन्द करवा दिया। नादिरशाह अगले एक महीने तक दिल्ली में रूका रहा और दिल्ली का शासक वही रहा। उसने शाही खजाने के जेवरात प्रसिद्ध मयूर सिंहासन (तख्त ताऊस) और कोहेनूर हीरा अपने अधिकार में कर लिया। बुरहान–उल–मुल्क को 20 करोड़ रूपये न दे पाने के अपराध में शारीरिक दण्ड देने की धमकी दी गयी जिसके कारण वह विश खाकर मर गया। बुरहान–उल–मुल्क के स्थान पर सफदरखाँ की नियुक्ति हुई जिसमें बुरहान उल–मुल्क हिस्से के दो करोड़ रूपये नादिरशाह को भेंट किये जाने से पूर्व उसने दिल्ली का ताज पुनः मुहम्मद शाह को सौंप दिया। उसकी इस उदारता के बदले मुहम्मद शाह ने नादिर को सिंध नदी के पश्चिम का इलाका–कश्मीर से सिंध तक तथा भट्टा और इसका निकटवर्ती बंदरगाह सौंप दिया। उसने काबुल का प्रान्त भी ईरान में मिला लिया।

4.3.4 नादिरशाह के आक्रमण का प्रभाव

नादिर शाह के हाथों मुगल सेना की पराजय का मुख्य कारण पारस्परिक लूट, कमजोर, नेतृत्व, पारस्परिक ईर्श्या और अविश्वास जैसे कारण उत्तरदायी थे। नादिरशाह के आक्रमण के दुश्परिणाम उसके जाने के बाद तक अनुभव किये जाते रहे। मुगल साम्राज्य पर उसके आक्रमण का प्रतिकूल राजनीतिक, आर्थिक, प्रशासनिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक

प्रभाव पड़ा। पश्चिमोत्तर प्रांत में मुगलों की स्थिति और भी दुर्बल हो गई। नादिरशाह के आक्रमण ने अहमदशाह अब्दाली के भावी आक्रमणों के लिए भारत के द्वार खोल दिये। ट्रांस–सिंधु क्षेत्र पर अफगानिस्तान का अधिकार हो गया। लाहौर पर भी नादिर का प्रभाव स्थापित हो गया। वहाँ के सूबेदार ने नादिर को प्रतिवर्श 20 लाख रूपए देने का वचन दिया।

- मुगल सम्राट मुहम्मद शाह वस्तुतः एक डेढ़ महीने तक नादिर का बंदी था। नादिर के हमले के बाद मुगल केन्द्रीय सत्ता का पतन खुलकर सामने आ गया। इस पराजय ने मुगल साम्राज्य की प्रतिश्ठा को नश्ट कर दिया। साम्राज्य की कमजोरी अब सर्वविदित थी सैनिक दुर्बलता ने विघटनकारी शक्तियों को बल दिया और साम्राज्य के पतन की प्रक्रिया तीव्र हो गई और मराठों ने अपने प्रभाव में अत्यधिक वृद्धि कर ली और मुगल दरबार में भी उनका प्रभाव सर्वोपरि हो गया।
- नादिर शाह के आक्रमण ने मुगल अर्थव्यवस्था को कमजोर कर दिया। वह दिल्ली की जनता को लूट खसोट कर जवाहरात, सोना, चाँदी, बरतन, असबाब और दूसरे कीमती सामान के अलावा 10 करोड़ रूपये नकद नादिरशाह के हाथ लगे। (इसके अतिरिक्त वह एक हजार हाथी, सात हजार घोड़े, दस हजार ऊँट, एक सौ तीस लेखक, दो सौ संगतराश, सौ राज बढ़ई भी अपने साथ ले गया। नादिरशाह के आक्रमण से मुहम्मदशाह और उसके दरबार पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा और देश तबाह हो गया। फारस और अफगानिस्तान के रास्ते होने वाले व्यापार पर बुरा असर पड़ा। दिल्ली को नादिर शाह द्वारा लूटने के कारण वहाँ के उद्योगों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।
- नादिरशाह और उसके सैनिकों द्वारा किये गये कत्लेआम को दिल्ली लंबे अरसे तक नहीं भूल सकी। शहर में राख और मुर्दों का ढेर लग गया। सड़ते मुर्दों के ढेर और उनसे उठने वाली दुर्गंध ने बचे–खुचे लोगों का नगर में रहना दूभर कर दिया। अनेक लोग नगर छोड़ने लगे। प्रशासनिक व्यवस्था दुर्बल हो गयी।
- नादिरशाह ने जाते समय मुहम्मद शाह को निजाम से सचेत रहने की सलाह देता गया कि निज़ाम एक धोखेबाज, धूर्त, स्वार्थी और अनुचित महत्वाकांक्षी युवक है। किन्तु बादशाह की आंखे नहीं खुली। यद्यपि उस पर बादशाह को संदेह तो हो गया था किन्तु फिर भी न तो उसे पद से हटाया और न ही शासन प्रबन्ध में कोई सुधार किया गया।
- नादिरशाह की चमत्कारिक सफलताओं ने यह स्पश्ट कर दिया कि मुगल सम्राट अपनी राजधानी तक की रक्षा करने एवं साम्राज्य की अखण्डता बनाए रखने के लिए नितान्त आवश्यक क्षेत्र की सुरक्षा को सुनिश्चित रखने में भी पूर्णतः अक्षम सिद्ध हुआ। और 1739 में इस आक्रमण के बाद मुगल साम्राज्य का लगभग एक अखिल भारतीय

राजनीतिक इकाई के रूप में अस्तित्व समाप्त हो गया। इस आक्रमण से विदेशी व्यापारी कम्पनियों को साम्राज्य की हुई कमजोरी का पता चल गया।

4.3.5 बोध प्रश्न

1) निम्नलिखित कथनों को पढ़कर ठीक (√) एवं गलत (×) का चिन्ह लगाओ।

   i) औरंगजेब का पुत्र मुअज्जम बहादुरशाह प्रथम के नाम से मुगल राज सिंहासन पर बैठा। ( )

   ii) नादिरशाह का आक्रमण बहादुर शाह जफर के शासन काल में हुआ।( )

   iii) नादिरशाह और मुगल शासक मुहम्मद शाह के बीच करनाल नामक स्थान पर युद्ध हुआ था। ( )

   iv) अंतिम मुगल शासक बहादुर शाह जफर का अंतिम समय रंगून में बीता। ( )

   v) नादिर शाह अपने साथ तख्त–ए–ताऊस ओर कोहिनूर हीरा ले गया। ( )

2) नादिरशाह के भारत आक्रमण और उसके प्रभाव का वर्णन कीजिए (250 शब्दों में उत्तर दें)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4.3.6 सारांश

इस चतुर्थ इकाई में आपने उत्तरवर्ती मुगल शासकों नादिरशाह के आक्रमण का अध्ययन किया। आपने पढ़ा कि 1707 ई0 में औरंगजेब द्वारा स्थापित विशाल और भव्य मुगल साम्राज्य उत्तरवर्ती मुगल शासकों के शासनकाल में गिर कर धराशायी हो गया। उत्तरवर्ती मुगल शासकों में शासक की योग्यता का नितान्त आभाव था मुगलों में शांतिपूर्ण उत्तराधिकार का कोई सर्वसम्मत स्वीकृत कानून न होने के कारण आपने देखा कि किस प्रकार प्रत्येक शासनकाल के अन्त में अगले शासन आरंभ पर राजगद्दी के लिए हिंसात्मक भ्रात् और पित् संघर्श हुए। मुगल दरबार की गुटबंदी ने देश में निरन्तर राजनीतिक अशांति की स्थिति पैदा और साम्राज्य के प्रशासन को नश्ट–भ्रश्ट कर दिया। केन्द्रिय सत्ता और प्रान्तों के बीच सम्बन्ध विच्छेद होते चले गये। रही सही कसर मुहम्मद शाह के शासन काल के अन्तिम दिनों में पूरी हो गई। 1739 में नादिरशाह के आक्रमण के बाद मुगल, साम्राज्य का लगभग एकीकृत राजनीतिक इकाई के रूप में अस्तित्व समाप्त हो गया। इस खण्ड की पाँचवी इकाई में अध्ययन किया जायेगा कि किस प्रकार ये सब कारण भी मुगल साम्राज्य के पतन में सहायक हुए।

4.4 बोध प्रश्नों के उत्तर

1) i) √ ii) × iii) √ iv) √ v) √

2) भाग 4.3 को देखिये।

4.5 सहायक ग्रन्थ

1. हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत
2. इरफान हबीब, मध्यकालीन भारत, 1981
3. इम्तियाज अहमद, मध्यकालीन भारत।

इकाई–5

मुगल साम्राज्य : के पतन के कारण

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 मुगल साम्राज्य के पतन के कारण

5.2.1 राजनैतिक कारण

5.2.2 विदेशी आक्रमण

5.2.3 धार्मिक कारण

5.2.4 आर्थिक कारण

5.2.5 मनसबदारी प्रथा के दोश

5.2.6 सैनिक कारण

5.2.7 नैतिक कारण

5.2.8 यूरोपीयों का आगमन

5.2.9 मुगल साम्राज्य के पतन में औरगंजेब का उत्तरदायित्व

5.3 बोध प्रश्न

5.4 सारांश

5.5 शब्दावली

5.6 बोध प्रश्न के उत्तर

5.7 सहायक ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद :–

- आप समझ पायेंगे कि वे कौन–कौन से कारण थे जिन्होंने मुगल साम्राज्य के पतन को संभव बनाया।
- आप समझ पायेंगे कि किन मुगल शासकों की नीतियों ने साम्राज्य को पतन की ओर अग्रसर किया।
- साम्राज्य के पतन के सामाजिक, आर्थिक धार्मिक राजनैतिक और विभिन्न कारणों से आप अवगत हो पायेंगे।

- मुगल साम्राज्य के पतन में औरंगजेब कहाँ तक उत्तरदायी था।

5.1 प्रस्तावना

मुगल सल्लनत जिसकी नींव 1526 ई0 में जहीर उद्दीन बाबर ने रखी थी ने समकालीन संसार को अपने विस्तृत प्रदेश, विशाल सेना तथा सांस्कृतिक उपलब्धियों से चकाचौंध कर दिया था, अठाहरवीं शताब्दी तक आते–आते साम्राज्य की जड़े डगमगाने लगी। अंततः 1857 ई0 के विप्लव के बाद जब बहादुर शाह जफर से यह औपचारिक पद अंग्रेजों द्वारा छीन लिया गया, तो मरणासन्न मुगल साम्राज्य ने दम तोड़ दिया।

5.2 मुगल साम्राज्य के पतन के कारण

मुगल साम्राज्य के पतन को इतिहाकारों ने भिन्न–भिन्न ढंग से व्याख्यायित करने का प्रयास किया। वास्तविकता में मुगल साम्राज्य के पतन के लिए विभिन्न कारण सम्मिलित रूप से उत्तरदायी थे जिसको निम्नलिखित बिन्दुओं के सन्दर्भ में देखा जा सकता है।

5.2.1 राजनैतिक कारण

मुगल केन्द्रिय शासन स्वेच्छाचारी राजतंत्र था अतः इसके लिए योग्य प्रभावशाली शासक की आवश्यकता होती है। औरंगजेब के शासन काल तक के सभी मुगल शासकों ने केन्द्रिय वयवस्था पर अपना पूर्ण नियंत्रण रखने में सफलता पायी थी। किन्तु उत्तरवर्ती मुगल शासकों में ऐसा कोई भी योग्य शासक नहीं था जो डगमगाते मुगल साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान कर पाता। बहादुर शाह प्रथम से लेकर बहादुर शाह जफर तक जितने भी शासक हुए उनमें चारित्रक, राजनीतिक, सैनिक अथवा प्रशासनिक क्षमता का नितान्त आभाव था और उनका ज्यादा से ज्यादा समय भोग–विलास में व्यतीत होता था। परिणाम स्वरूप राज्य में क्षेत्रीय तत्व सक्रिय एवं शाक्तिशाली हो गए और प्रशासनिक व्यवस्था कमज़ोर पड़ गई।

मुगलों में उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम नहीं था इसके कारण उनका राजवंशीय शासन और भी शिथिल हो गया। प्रत्येक शासन काल के अन्त में तथा अगले शासनक काल के आरम्भ होने पर राजगद्दी के लिए हिंसक भ्रातृघातक अथवा पितृघातक संघर्श हुए। राजगद्दी के लिए यह संघर्श कभी–कभी बादशाह के जीवन–काल में ही प्रारम्भ हो जाता था। इस संघर्श में मुगल अमीर, दरबारी, सूबेदार, जागीरदार, मनसबदार महल की स्त्रियां तक भाग लेती थी इससे गृह युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो जाती थी। इस संघर्श ने विघटनात्मक तत्वों को प्रोत्साहित किया और एक समय मुगल बादशाह विभिन्न शक्तिशाली सरदारों के हाथों में कठपुतली बनने को बाध्य हो गये। एक समय सैयद बंधुओं का वर्चस्व मुगल दरबार में इतना अधिक बढ़ गया था कि एक समय वे ही राजा–निर्माता बन गए। इतिहासकार स्मिथ ने लिखा हैः निरन्तर उत्तराधिकार युद्धों से जो अराजकता उत्पन्न हुई

वह निंसदेह शाही ढांचे को बरबाद करने में सहायक हुई।

अमीरों की दलबंदी तथा उनके शडयंत्रों ने मुगल साम्राज्य पर गहरा आघात पहुँचाया। मुगल दरबार के ईरानी, हिन्दूस्तानी और तूरानी गुटों में विभाजन ने निरन्तर अशांति की स्थिति की स्थिति पैदा कर साम्राज्य के प्रशासन को हानि पहुँचायी। इन गुटों में मुगल साम्राज्य के प्रति वफादारी का सर्वथा आभाव था तथा प्रत्येक गुट केवल स्वार्थसिद्धि में सक्रिय थे। जो अन्ततः मुगल साम्राज्य के लिए घातक सिद्व हुआ।

केन्द्रिय शासन की शीथिलता का लाभ प्रान्तीय सूबेदारों ने उठाना प्रारम्भ किया और अपने–अपने सूबे में इन लोगों ने स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने का प्रयास शुरू कर दिया। फलतः हैदराबाद, अवध, मालवा, बंदेखखण्ड, पंजाब राजपूताना में मुगलों की शक्ति समाप्त हो गई। दक्षिण में मराठों ने पहले ही अपनी शक्ति बढ़ा ली थी। मुगल सत्ता केवल दिल्ली के आस–पास सिमट गयी थी।

औरंगजेब के शासन काल में मुगल साम्राज्य का अत्यधिक विस्तार हो गया था। इतने बड़े साम्राज्य के केन्द्रिय नियंत्रण में रख पाना मुश्किल था। औरंगजेब द्वारा सुदुर दक्षिण के गोलकुंडा और बीजापुर राज्यों को मुगल साम्राज्य में मिलाना उसकी बड़ी भूल थी।

5.2.2 विदेशो आक्रमण

मुगल साम्राज्य के पतन के प्रमुख कारणों विदेशी आक्रमण भी महत्वपूर्ण कारण था। अपनी आन्तरिक दुर्बलताओं से जर्जर मुगल साम्राज्य पर विदेशी आक्रमणों ने गहरा आघात किया। 1739–40 ई0 में नादिरशाह के आक्रमण ने साम्राज्य का वस्तुतः अन्त कर दिया और मुगलों की सत्ता मात्र औपचारिकता रह गयी, उसके सेनापति अहमद शाह अब्दाली ने भारत पर सात बार आक्रमण किया और देश को खूब लूटा। अहमद शाह अब्दाली के आक्रमणों का सामना मुगलों के संरक्षक मराठों से हुआ जिसको उसने परास्त किया। शाहआलम को अंग्रेजों से संधि करनी पड़ी। इस प्रकार मुगलों की स्वतंत्र सत्ता समाप्त हो गई।

5.2.3 धार्मिक कारण

मुगलों की धार्मिक नीति में परिवर्तन को बहुत से विद्वानों ने मुगल साम्राज्य के पतन का कारण माना है। अकबर ने उदार धार्मिक नीति अपनाकर हिन्दुओं के अपना मित्र बनाया था और मुगल साम्राज्य की नींव को सुदृढ़ किया था। परन्तु आगे के मुगल शासकों के द्वारा धीरे–धीरे संकीर्ण धार्मिक नीति अपनायी गयी। शाहजहाँ और औंरंगजेब की संकीर्ण नीतियों ने जाने अनजाने बहुसंख्यक हिन्दुओं को मुगलों का विरोधी बना दिया। जिसका परिणाम मुगल साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुआ। उन्हें एहसास होने लगा कि मुगल जाने–अनजाने उनके साथ धार्मिक भेदभाव कर रहे है। और उन पर अत्याचार कर रहे हैं इस भावना को स्वार्थगत राजनीति ने और बढ़ावा दिया फलतः मुगल साम्राज्य जनता की सहानुभूति खोने

लगा,और इसका लाभ उठाकर जाटों, सतनामियों, राजपूतों, सिक्खों, बुंदेलों तथा मराठों ने विद्रोह करना प्रारम्भ कर दिया। धर्म राजनीति पर हावी हो गया। इन विद्रोहियों को दबाना मुगलों के लिए मुश्किल हो गया और मुगल साम्राज्य का अवसान प्रारम्भ हो गया।

5.2.4 आर्थिक कारण

मुगल साम्राज्य के पतन के प्रमुख कारणों में आर्थिक दुर्बलता एक प्रमुख कारण बनीं। औरंगजेब के वित्तीय उपायों और देश के सभी भागों में लगातार लड़ाइयों से मुगल खजाना खाली हो गया। मोरलैण्ड के अनुसार 'औरगजेब की मृत्य के साथ ही राश्ट्रीय दिवालियापन सुनिश्चित हो गया।' आरम्भिक शासकों ने कृशि के विकास की ओर अवश्य ध्यान दिया परन्तु उस अनुपात मे व्यापार वाणिज्य की उन्नति की ओर विशेश ध्यान नहीं दिया गया। यद्यपि 17वीं शताब्दी में व्यापार और हस्तशिल्प उत्पादन की उन्नति हुई वहाँ कृशि उत्पादन में इसी अनुपात में वृद्धि सम्भव नहीं हुई। भूमि के निरन्तर उपयोग के कारण इसकी उर्वरता में कमी आ रही थी, कृशि उत्पादन के यंत्र और तरीके अत्यन्त पुराने थे, इससे उत्पादन में वृद्धि सम्भव नहीं थी जिसके कारण आर्थिक स्थिति निरन्तर दुर्बल होती गयी। शाहजहाँ ने भूमि का लगान बढ़ाकर उपज का आधा (½) कर दिया था। औरगंजेब के समय से लगान प्रत्यक्षतः किसानों से नहीं अपितु ठेकेदारों के माध्यम से लिया जाना आरम्भ किया गया जिससे किसानों की स्थिति और अधिक दुर्बल हुई। साथ–साथ किसानों पर कर्मचारियों और ठेकेदारों के अत्याचार भी बढ़ने लगे जिन्हें रोकने में सरकार असमर्थ रही। औंरगजेब के अन्तिम दिनों में स्थिति और भी बिगड़ गयी थी दीर्घकालीन दक्षिण के युद्धों ने न केवल कोश को रिक्त कर दिया अपितु देश के व्यापार और उद्योग का भी नाश कर दिया। सेना के प्रयाणों ने खड़ी फसलें को रौंद डाला।

युद्धों में अत्यधिक व्यय हुआ। शाहजहाँ और औंरगजेब के काल के युद्ध में राज्य का अत्यधिक धन व्यय हुआ। शाहजहाँ के उत्तर–पश्चिम तथा मध्य एशिया के युद्धों में भी 12 करोड़ रूपया व्यय हुआ। औरंगजेब के युद्धों में भी अपरार धन का व्यय हुआ था। शाहजहाँ ने अनेक इमारतों का निर्माण कराकर अपार धनराशि का व्यय किया था। इसके अतिरिक्त उत्तराधिकार के विभिन्न युद्धों शासन–कार्यो में अधिक व्यय स्वार्थी सरदारों की धनलोलुपता, व्यभिचारी मुगल बादशाहों और नादिरशाह तथा अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणें ने मुगल साम्राज्य की कमर तोड़ दी। बादशाह और प्रजा दोनों ही निर्धन हो गये। आर्थिक सम्पन्नता के नश्ट हो जाने से मुगल साम्राज्य खोखला हो गया और उसका पतन स्वाभाविक था।

5.2.5 मनसबदारी प्रथा के दोश

मनसबदारी प्रथा के कारण मुगल सेना और अधिकारी तंत्र दोनों ही भ्रश्ट हो गए और मनसबदारी व्यवस्थान मनसबदारों की संख्या में निरन्तर वृद्धि के कारण जागीरदारी संकट उत्पन्न हो गया औरंगजेब के अधीन 14,449 मनसबारों में से लगभग 7000 को जागीरों

के रूप में और 7,449 के नकद रूप में भुगतान किया जाता था। औरगंजेब द्वारा दक्षिण भारत में साम्राज्य विस्तार के कारण एक समस्या पूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। जागीर देने के योग्य भूमि का विस्तार इन अनुपात में नहीं हो रहा था। अतः कम जागीरों को अधिक जागीरदारों में वितरण एक समस्या बन गयी। बहुत से मनसबादारों की अच्छी और कुछ समय बाद लम्बे समय तक भी जागीर प्राप्त होने के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। लाभदायक जागीरों की प्राप्ति के लिए सामन्तों में आपसी होड़ मच गयी और इससे केन्द्रिय और प्रशासनिक कार्य कुशलता पर बुरा असर पड़ा। उत्तरवर्ती मुगल शासकों के काल में केन्द्रिय शक्ति के कमजोर पड़ने पर जागीरदारों ने अपने अधिकारों का दुरूपयोग आरम्भ कर दिया जिसके कारण गम्भीर राजनैतिक संकट उत्पन्न हुआ। मनसबदारों को अपनी आय की अनिश्चितता के कारण सैनिकों की संख्या कम हो गई क्योंकि उनके द्वारा द्वारा रखे जाने वाले सैनिकों की संख्या से सम्बद्ध वेतन तथा भत्तों (जागीरों के द्वारा दिए जाने वाले) के अनुसार निर्धारित की जाती थी। मनसबदारी मुगल सैनिक शक्ति को दुर्बल बना दिया।

5.2.6 सैनिक कारण

अकबर द्वारा मनसबदारी प्रथा में अनेक गम्भीर दोश आ गये थे। विभिन्न जातियों और प्रदेशों के मनसबदारों द्वारा जातीय आधार पर संगठित की गयी सेना एक शानदार जलूस मात्र रह गयी थी मुगल सेना का कोई राश्ट्रीय चरित्र. नहीं था। मुगलों की सेना में विभिन्न जातियों, प्रान्तों के सिपाही थे। इसलिए वे अपना मालिक बादशाह को नही बल्कि सरदार को मानते थे और उसी के प्रति वफादार होते थे। इसलिए वे संगठित हो कर कार्य नहीं कर पाते थे। ऐसी स्थिति में बादशाह सरदारों की सैन्य शक्ति पर निर्भर रहता था। और ऐसी सेना में समान योग्यता, युद्ध की समान पद्धति नहीं हो सकती थी।

शाहजहाँ के काल से ही वीर राजपूतों और अफगानों की सेना में भरती बन्द कर दी गयी थी, औरंगजैब ने भी उनकी उपेक्षा की जिसके कारण भी मुगल सेना कमजोर पड़ गयी। अच्छे जहाजी बेड़े का अभाव भी मुगल सेना को कमजोर बनाने का कारण था। उत्तरकालीन मुगल शासकों के काल में केन्द्रिय शासन के कमजोर होने पर मुगल सेना में अनुशासनहीनता फैल गयी थी। उसमें के समय जैसी राजभक्ति नहीं रह गयी थी। मुगल सेना में अनुशासनहीनता एवं विलासिता भी प्रविश्ट कर गई। सेनापतियों का आपसी विद्वेश, गलत रणनीतियाँ पुराने अस्त्र–शस्त्रों को प्रधानता, सिर्फ मैदानी युद्धों में ही पारंगत होना छापामार युद्ध प्रणाली का अभाव निरन्तर युद्धों में संलग्नता ने मुगल सेना युद्ध कौशलता को हानि पहुँचायी।

5.2.7 नैतिक कारण

मुगल साम्राज्य के पतन के कुछ नैतिक कारण भी थे। जहाँगीर की विलासिता के कारण सम्पूर्ण राजनैतिक शक्ति नूरजहाँ के हाथ आ गयी थी औरंगजेब के उत्तराधिकारी बहादुर शाह प्रथम 'शाह बेखबर' और मुहम्मदशाह 'रंगीले' के नाम से प्रसिद्ध थे। डा0 स्मिथ

का कथन है जब तक शासकों को किसी प्रकार की आँच नहीं आयी, परन्तु जैसी ही उनका नैतिक पतन हुआ तो अराजकता ने धर कर लिया। मुगल सरदार अपने बादशाहों का अनुकरण कर रहे थे जिसके जीवन में शराब, स्त्री, स्वार्थ, शडयंत्र, पदलोलुपता आदि का ही प्राधान्य था और मुगल सरदारों की अयोग्यता उनका स्वार्थ और नैतिक पतन भी मुगल साम्राज्य के पतन का एक मुख्य कारण था।

मुगलों ने अपने समय में शिक्षा की उचित व्यवस्था नहीं की थी जिसके गम्भीर परिणम हुए और मुगल साम्राज्य में योग्य तथा वफादार सेवक मिलने समाप्त हो गये। मुगल विज्ञान और प्रोद्योगिकी में भी अविकसित थे।

5.2.8 यूरोपियों का आगमन

यूरोपीय 16 वीं शताब्दी से ही व्यापार की आड़ में राजनीति में दिलचस्पी लेने लगे थे। 18वीं शताब्दी में अंग्रेजों ने अपना प्रभुत्व बढ़ा लिया था और मुगल इस समय तक शक्तिहीन हो चुके थे। बक्सर के युद्ध में शाहआलम को परास्त होना पड़ा और वे अंग्रेज कम्पनी के पेंशन भोक्ता बन गये। यूरोपीय शक्तियों के आगमन और प्रभाव विस्तार पर मुगल नियंत्रण नहीं रख पायें और मुगल साम्राज्य पर अंततः यूरोपीय शक्ति ने कब्जा जमा लिया।

5.2.9 मुगल साम्राज्य के पतन में औरंगजेब का उत्तरदायित्व

औरंगजेब की मृत्यु के के पश्चात् साम्राज्य का तीव्र गति से पतन आरम्भ हो गया। मुगल साम्राज्य के पतन के कई कारण थे तथा पतन न ही आकस्मिक था और नहीं विस्मयकारी था। मुगल साम्राज्य के पतन के लिए बहुत से इतिहासकार मुख्यतः यदुनाथ सरकार एक ओर औंरगजेब को उत्तरदायी मानते है वहीं बहुत से आधुनिक इतिहासकार ने उसे इन आरोपों से मुक्त करने का प्रयास करते है। औरंगजेब की हिन्दू विरोधी नीति न केवल बहुसंख्यक हिन्दू जनता बल्कि जाट, मराठो, राजपूत और सिक्खों को मुगलों का विद्रोही बना दिया था। औरंगजेब ने हिन्दूओं के मन्दिरों को नश्ट कराके प्रजा के बहुसंख्यक हिन्दू समुदाय को अपना कट्टर शत्रु बना लिया। जजिया लगाना, हिन्दुओं को माल विभाग से पृथक करना, हिन्दूओं पर अन्य सामाजिक प्रतिबन्ध मुगल साम्राज्य के लिए विद्रोहात्मक कारण बनें और इस कारण ऐसे देश लोगों के हाथ मजबूत हो गये जो राजनैतिक अथवा अन्य कारणों से मुगल साम्राज्य के खिलाफ थे। औरंगजेब की दक्कन नीति भी आत्मघाती सिद्ध हुई। बीजापुर और गोलकुंडा को अपने कब्जे में करने के बाद औरंगजेब के लिए मराठों पर नियंत्रण रखना असम्भव हो गया। औरगंजेब मराठा आंदोलन के सही स्वरूप को न पहचान सका और जयसिंह की शिवाजी को मित्र बनाने के सलाह की अनदेखी शिवाजी की हत्या आदि उसकी गंभीर राजनैतिक भूलें थे औरगजेब के राजनीतिक अभियानों ने साम्राज्य की शांति और अर्थव्यवस्था पर बुरा–प्रभाव डाला। अर्थव्यवस्था के समूचित विकास की उपेक्षा होने के कारण साम्राज्य की आय में घाटा हुआ। राज्य की आमदनी बढ़ाने के लिए नये कर

लगाने से आम जनता की तकलीफें बढ़ी। मुगल साम्राज्य के पतन के लिए यद्यपि अनेक अन्य कारण उत्तरदायी थे तथापि औरंगजेब की नीतियों ने भी उसके पतन को प्रोत्साहित किया था।

5.3 बोध प्रश्न

दस–दस पंक्तियों में इनका उत्तर दीजिए।

(1) मुगल साम्राज्य के पतन के राजनैतिक कारणों की विवेचना कीजिए।

(2) मुगल साम्राज्य के पतन में औरंगजेब के उत्तरदायित्व को रेखांकित कीजिए।

5.4 सारांश

मुगल साम्राज्य जैसे विस्तृत साम्राज्य का पतन किसी एक कारण से नहीं हो सकता। अतः इतिहासकारों तथा विद्धान ने इसके भिन्न–भिन्न कारण सुझायें है। डॉ0 सतीशचन्द्र ने मनसबदारी अथवा जागीरदारी व्यवस्था की असफलता को मूलरूप से मुगल साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी माना है। प्रो0 इरफान हबीब ने भी आर्थिक संकट को मुगल साम्राज्य के पतन के लिए पूर्णतः उत्तरदायी बताया है। अहमद सिद्दीकी ने राजनीतिक प्रशासकीय और आर्थिक दुर्बलताओं को सम्मिलित रूप से मुगल साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी माना है। सिडनी ओवन के अनुसार अयोग्य मुगल शासकों के कारण मुगल साम्राज्य का पतन हुआ। विलियम आर्विन सैनिक अक्षमता को, इरफान हवीब ने भिन्न–भिन्न विद्रोहों को पतन का कारण माना है।

मुगल साम्राज्य के पतन में मुख्यतः अयोग्य उत्तराधिकारी, अभिजात वर्ग का पतन, दरबारी गुटबदी उत्तराधिकार के नियम का अभाव, सैनिक दुर्बलता, मराठों का उदय, आर्थिक दिवालियापन विदेशी आक्रमण आदि कारण उत्तरदायी थे। इन सभी कारणों ने सम्मिलित रूप से मुगल का साम्राज्य के पतन को सम्भव बनाया।

5.5 बोध प्रश्न

(1) देखें 5.2.1

(2) देखें 5.2.9

5.6 इस खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

1. Edwards and Gorette : Mughal Rule in India.
2. Ishwari Prasad : The Mughal Empire
3. Sexena, Banarsi Prasad : History of Shah Jhahan of Delhi (1923)

4. Bernier, Frangis : Travels in the Mughal Empire (Translated in to English by A. Constable)

5. **मध्यकालीन भारत** : इम्तियाज अहमद; बिहार रिसर्च एण्ड स्टडीज प्राइवेट लिमिटेड, तारा भवन, पटना।

6. उत्तर मुगल कालीन भारत का इतिहास, चन्द्र सतीश, नई दिल्ली 1980

7. दि रेलिजियस पॉलिसी ऑव दी मुगल इम्परर्स, शर्मा श्रीराम, बम्बई 1962.

8. मध्य कालीन भारत, इरफान हबीब, 1981.

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, प्रयागराज

UGHY-103

भारतीय इतिहास
1556–1857 ई0 तक

खण्ड – 3

मध्यकालीन प्रशासनिक क्रियाकलाप एवं चुनौतियाँ

इकाई – 1 89

शेरशाह का शासन प्रबन्धन

इकाई – 2 102

मुगलों का शासन प्रबन्धन–केन्द्रीय, प्रान्तीय, स्थानीय प्रशासन, भू–राजस्व व्यवस्था

इकाई – 3 116

मनसबदारी एवं जागीरदारी प्रथा

इकाई – 4 128

मराठों का शासन प्रबन्धन

इकाई – 5 137

मुगलों के अन्तर्गत कृशि संकट, जाट, सतनामी, सिक्ख एवं बुदेलखण्ड का विद्रोह

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय उत्तर प्रदेश प्रयागराज

परामर्श समिति	UGHY-103
प्रो0 सीमा सिंह	**कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज**
कर्नल विनय कुमार	**कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज**

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार	आचार्य इतिहास एवं प्रभारी निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी	आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 संजय श्रीवास्तव	आचार्य, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशाखा विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

प्रे0 संतोषा कुमार (ब्लॉक–1)	आचार्य, इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ. नम्रता प्रसाद (ब्लॉक–2)	एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास सी.एम.पी.पी.जी. कॉलेज, प्रयागराज
डॉ. (कुमारी) पंकज शर्मा (ब्लॉक–3 एवं 6)	सहायक आचार्य, इतिहास नानकदेव संस्कृत पी.जी.कॉलेज,मेरठ
डॉ. संतोष कुमार चतुर्वेदी (ब्लॉक–4)	आचार्य, इतिहास महामति प्राणनाथ पी.जी.कॉलेज,मऊ, चित्रकूट
डॉ0 तनवोर हुसैन (ब्लॉक–5)	सहायक आचार्य, इतिहास, जी.एफ.पी.जी. कॉलेज,शाहजहाँपुर

सम्पादक

प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी (ब्लॉक–1,3,4,5,6)	आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. अरुणा सिन्हा (ब्लॉक–2)	आचार्य, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-ShareAlike 4.0 International License.

ISBN : 978-93-94487-91-8

इकाई–प्रथम

शेरशाह का शासन–प्रबन्धन

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 केन्द्रीय संगठन

1.2.1 सुलतान की स्थिति

1.2.2 प्रशासकीय विभाग

1.3 प्रान्तीय एवं स्थानीय संगठन

1.3.1 प्रान्तीय प्रशासन

1.3.2 स्थानीय प्रशासन

1.4 सैन्य संगठन

1.5 गुप्तचर व्यवस्था

1.6 पुलिस व्यवस्था

1.7 न्याय व्यवस्था

1.8 राजस्व व्यवस्था

1.9 शेरशाह के सार्वजनिक हित के कार्य

1.9.1 सड़कों का निर्माण

1.9.2 सरायों का निर्माण

1.10 सारांश

1.11 शब्दावली

1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.13 सहायक ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

शेरशाह सूरी की गणना मध्यकालीन भारत के महानतम शासकों में की जाती है। इसका कारण शेरशाह की सैनिक उपलब्धियाँ नहीं, वरन् उसके द्वारा उच्च कोटि की

शासन–व्यवस्था की स्थापना किया जाना था, इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप जानेंगे कि–

1. शेरशाह का केन्द्रीय संगठन
2. प्रान्तीय एवं स्थानीय संगठन
3. सैन्य संगठन
4. गुप्तचर व्यवस्था
5. पुलिस व्यवस्था
6. न्याय व्यवस्था
7. राजस्व व्यवस्था
8. शेरशाह के सार्वजनिक हित के कार्य

1.1 प्रस्तावना

शेरशाह एक कुशल शासन प्रबन्धक था। शेरशाह ने सर्वप्रथम अपने पिता की जागीर के प्रबन्धक के रूप में प्रशासन की जानकारी प्राप्त की थी। इसके अतिरिक्त मुगल सेवा में रहने के कारण उसे मुगलों की शासन–प्रणाली, सैनिक संगठन एवं राजस्व व्यवस्था का उपयुक्त ज्ञान था। शेरशाह मात्र पाँच वर्शो (1540–1545 ई0) तक शासक रहा था परन्तु फिर भी वह अपनी योग्यता को सिद्ध करने में सफल रहा। जहाँ तक शासनतंत्र का सम्बन्ध है, दिल्ली के अन्य सुल्तानों की भाँति शेरशाह का शासन भी निरंकुश एवं एकतंत्रीय था जिसके अन्तर्गत समस्त शक्तियाँ उसके हाथों में केन्द्रित थीं। लेकिन फिर भी वह निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासक नहीं था। वह प्रजा के हितों और अधिकारों का पूर्ण ध्यान रखता था। वूल्जे हेग ने भी शेरशाह सूरी की प्रशासनिक व्यवस्था की प्रशंसा करते हुये लिखा है कि ''अकबर से औरंगजेब तक किसी अन्य में शासन का इतना बारीक ज्ञान नहीं था और न ही सार्वजनिक हित के कार्यों पर कोई ऐसा नियंत्रण रख सका जैसा कि शेरशाह सूरी रखता था।''

1.2 केन्द्रीय संगठन

अफगान राज्य की शक्ति का केन्द्र स्वयं सुलतान था। वह राजधानी आगरा से शासन करता था। राज्य की सारी शक्तियाँ उसी के हाथों में केन्द्रित थीं। सुलतान की सहायता के लिए विभिन्न पदाधिकारी नियुक्त किए गए एवं प्रशासनिक विभागों की स्थापना की गई।

1.2.1 शेरशाह (सुलतान) की स्थिति

राज्य की समस्त शक्तियाँ शेरशाह के हाथों में ही केन्द्रित थीं। वह शासन का सर्वोच्च

पदाधिकारी था। वह कार्यपालिका, न्यायपालिका एवं सैनिक मामलों का प्रधान था। राज्य की सभी महत्त्वपूर्ण नियुक्तियाँ स्वयं शेरशाह द्वारा ही होती थीं। समस्त कर्मचारी अपने कार्यों के लिए शेरशाह के प्रति उत्तरदायी थे। वे उसकी इच्छानुसार ही अपने पद पर बने रह सकते थे। सभी अफगान सरदार भी उसके मातहत थे, उसके समकक्ष नहीं। शेरशाह की शक्ति पर किसी भी प्रकार का अंकुश अथवा नियंत्रण नहीं था। निरंकुश और असीमित शक्ति का मालिक होते हुए भी शेरशाह ने स्वेच्छाचारी शासक की तरह शासन नहीं किया बल्कि उसने एक उदार तानाशाह के समान अपनी शक्ति का उपयोग जनता की भलाई के लिए किया। सिद्धान्तः, उसने अफगानों की राजस्व सम्बन्धी नीतियों को अपनाया, परन्तु व्यवहार में वह तुर्क, अफगान शासकों की तरह ही शासन करता था।

1.2.2 प्रशासकीय विभाग

तुर्की प्रशासनिक व्यवस्था के विपरीत शेरशाह ने वजीर का पद नहीं रखा। इसका कारण यह था कि वह अफगानों की इस प्रवृत्ति से अच्छी तरह परिचित था कि वे किसी को भी अपने से श्रेश्ठ नहीं मानते थे। इसलिए, शेरशाह ने सारी शक्ति अपने ही हाथों में केंद्रित रखी और प्रशासन की समुचित व्यवस्था के लिए विभिन्न प्रशासकीय विभाग बनाए। इन विभागों के प्रधानों की हैसियत मंत्री के समान थी। उनकी नियुक्ति शेरशाह स्वयं करता था। सभी विभागों के प्रधानों की स्थिति एक समान थी। सभी शेरशाह के प्रत्यक्ष नियंत्रण में रहकर कार्य करते थे। शेरशाह के समय में प्रमुख प्रशासकीय विभाग थे दीवान–ए–वजारत, दीवान–ए–आरिज, दीवान–ए–रसालत, दीवान–ए–इन्शा, दीवान–ए–काजी और दीवान–ए–वरीद।

दीवान–ए–वजारत– यह विभाग केन्द्रीय सरकार का सबसे महत्वपूर्ण विभाग था। इसके प्रधान की स्थिति तुर्ककालीन वजीर (प्रधानमंत्री) से मिलती–जुलती है। वह अर्थमंत्री के समान भी कार्य करता था। राज्य की आय–व्यय की देखभाल उसी के जिम्मे थी तथा अन्य विभागों के कार्यो का निरीक्षण भी समय–समय पर उसके द्वारा किया जाता था। प्रशासन का महत्वपूर्ण विभाग होने के कारण शेरशाह स्वयं इस विभाग के कार्यो में रूचि लेता था।

दीवान–ए–आरिज– इस विभाग के प्रधान को आरिज–ए–मुमालिक की उपाधि दी गई थी। यह सैन्य विभाग का प्रधान हेाता था। उसकी स्थिति युद्धमंत्री के ही समान थी। सेना के संगठन, सैनिकों की नियुक्ति, उनके वेतन, रसद इत्यादि की व्यवस्था की जिम्मेदारी इसी विभाग पर थी। शेरशाह का इस विभाग पर प्रत्यक्ष नियंत्रण रहता था।

दीवान–ए–रसालत– यह विभाग दीवान–ए–मोहतसिब के नाम से भी जाना जाता था। इस विभाग की तुलना विदेश विभाग से की जाती थी। इसके प्रधान की हैसियत विदेश मंत्री के समकक्ष थी। वैदेशिक नीति से संबद्ध मामलों की देखभाल इसी विभाग के जिम्मे थी। यह राज्य में बाहर से आने वाले विदेशी दूतों का स्वागत करता, उनके ठहरने की व्यवस्था करता

एवं आवश्यकतानुसार दूसरे राज्यों में अपने दूतों के भेजने की भी व्यवस्था करता था। अन्य राज्यों से कूटनीतिक संबंध स्थापित करने, पत्र–व्यवहार करने तथा आवश्यकता पड़ने पर दान एवं भेंट की व्यवस्था भी इस विभाग को करनी पड़ती थी।

दीवान–ए–इन्शा– इस विभाग को राजकीय घोशणाओं को तैयार करवाने, उन्हें प्रसारित करवाने, प्रांतीय गर्वनरों एवं स्थानीय पदाधिकारियों से पत्र–व्यवहार करने की जिम्मेदारी सौंपी गई थी। वस्तुतः, यह विभाग सरकारी अभिलेखागार के रूप में कार्य करता था। राज्य में होने वाली घटनाओं को सुलतान तक पहुँचाने का कार्य भी इसी विभाग के जिम्मे था। यह विभाग डाक–विभाग का भी कार्य करता था।

दीवान–ए–काज़ा– इस विभाग का प्रधान मुख्य काजी (न्यायाधीश) होता था। मुख्य न्यायाधीश की हैसियत से वह राज्य में समुचित न्याय की व्यवस्था करता था। वह अधीनस्थ न्यायालयों के फैसलों के विरूद्ध अपील भी सुन सकता था। लेकिन इन सबके ऊपर न्याय की अन्तिम अदालत सुलतान की होती थी। उसका निर्णय सर्वमान्य होता था।

दीवान–ए–वरीद– इस विभाग का प्रधान वारिद–ए–मुमालिक होता था। उसके जिम्मे गुप्तचर व्यवस्था का संगठन सौंपा गया था। राज्य में होने वाली प्रत्येक घटना पर निगाह रखना एवं उनकी सूचना सुलतान तक पहुँचाने का कार्य यह विभाग करता था। शाही डाक को ले जाने में भी इन गुप्तचरों का उपयोग किया जाता था। इस प्रकार उपयुक्त विभागों की सहायता से शेरशाह केन्द्रीय प्रशासन का कार्य संभालता था परन्तु इसके साथ ही साथ अपने राज्य के प्रत्येक मामले की देखरेख में वह स्वयं भी पूरी रूचि रखता था। इन महत्त्वपूर्ण विभागों के अतिरिक्त केन्द्रीय प्रशासन से संबद्ध अन्य किसी प्रमुख पदाधिकारी का उल्लेख नहीं मिलता है, परन्तु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि सिर्फ इन्हीं व्यक्तियों (विभागों) के बलबूते पर केन्द्रीय प्रशासन नहीं चलता होगा। निश्चित ही कुछ अन्य प्रशासनिक पदाधिकारी भी रहे होंगे।

बोध प्रश्न–1

1. शेरशाह के केन्द्रीय प्रशासन पर दस पंक्तियाँ लिखिये।
2. निम्नलिखित कथनों में से कौन–सा सही है और कौन–सा गलत। सही कथन के सामने (*3*) तथा गलत कथन के सामने (×) का चिन्ह लगाये–

   i दीवान–ए–वजारत का प्रमुख अर्थ मंत्री के समान भी कार्य करता था।

   ii दीवान–ए–इंशा का सम्बन्ध विदेश विभाग से था।

   iii गुप्तचर विभाग का प्रधान वरीद–ममालिक होता था।

   iv शाही डाक को ले जाने में गुप्तचरों का प्रयोग किया जाता था।

1.3 प्रान्तीय एवं स्थानीय संगठन

1.3.1 प्रान्तीय प्रशासन

शेरशाह सूरी का साम्राज्य काफी विस्तृत था, अतः उसने अपने साम्राज्य को अनेक प्रान्तों में विभक्त कर रखा था जिन्हें **'इक्ता'** कहा जाता था। प्रत्येक इक्ता का सर्वोच्च अधिकारी सूबेदार होता था, जो साधारणतः राजा का पुत्र, मित्र अथवा घनिश्ठ व्यक्ति होता था।

प्रत्येक प्रान्त पुनः अनेक जिलों में विभक्त था, जिन्हें **'सरकार'** कहा जाता था। प्रत्येक सरकार में दो प्रमुख अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी जिन्हें **शिकदार–शिकदारान** व **मुंसिफ–मुन्सिफान** कहते थे। इनमें से शिकदार–शिकदारान का पद ऊंचा होता था तथा उसका कार्य सरकार में सामान्य प्रशासन चलाना था। मुंसिफ–मुन्सिफान का कार्य न्याय करना था। इन अधिकारियों की सहायता के लिए अनेक अधिकारी होते थे।

1.3.2 स्थानीय प्रशासन

प्रत्येक सरकार अनेक नगरों अथवा परगनों में विभक्त होती थी, प्रत्येक परगने के प्रधान को **शिकदार** या **आमिल** कहते थे। अपने परगने से भूमिकर प्राप्तकर राजकोश में जमा कराना शिकदार का ही कार्य होता था। शिकदार के पद की महत्ता को देखते हुए शेरशाह जल्दी–जल्दी इनका स्थानान्तरण करता था ताकि भ्रश्टाचार न हो सके। प्रत्येक परगने में एक अमीन भी होता था जो भूमि की नाप करता था। समस्त लेखा जोखा रखने के लिए प्रत्येक परगने में एक कानूनगो भी होता था।

प्रत्येक परगना अनेक ग्रामों से मिलकर बनता था। प्रशासन की न्यूनतम इकाई ग्राम ही थी। ग्राम के प्रशासन के लिए **'मुकद्दम'** होता था जो सरकारी कर्मचारी न होकर गांव का ही प्रतिश्ठित व्यक्ति होता था। इसका पद अवैतनिक होता था। मुकद्दम के अतिरिक्त गांव का लेखा–जोखा रखने के लिए पटवारी होता था। गांव के प्रशासन में पंचायतें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं।

1.4 सैन्य संगठन

शेरशाह ने अफगान साम्राज्य के निर्माण एवं इसकी सुरक्षा के लिए सैन्य संगठन पर विशेश ध्यान दिया। उसने एक स्थायी और विशाल सेना का संगठन किया। उसके पूर्व सुलतान की अपनी निजी सेना छोटी थी। अधीनस्थ शासक और सामंत ही आवश्यकता पड़ने पर अपनी–अपनी सेना के साथ सुलतान की मदद करते थे। ऐसी सेना विश्वसनीय नहीं थी।

इसकी स्वामिभक्ति सुलतान के प्रति न होकर अपने मालिक के प्रति थी इसलिए शेरशाह ने सैनिकों की सीधी भरती की शुरूआत की। उनकी भरती में शेरशाह स्वयं दिलचस्पी लेता था। शेरशाह की सेना के चार मुख्य अंग थे– घुड़सवार, पैदल, हाथी दल एवं बंदूकची तथा तोपची। इस सेना में घुड़सवार दल सबसे बड़ा था। अब्बास खाँ शेरवानी घुड़सवार सैनिकों की संख्या करीब 1 लाख 50 हजार बतलाता है। पैदल सैनिकों (पाईक) की संख्या, जिसमें तीरंदाज भी सम्मिलित थे करीब 25 हजार थी। इस टुकड़ी में कुछ उच्च कोटि के सैनिक भी होते थे जिन्हें सुलतान के व्यक्तिगत रक्षकों की टुकड़ी में भी रखा जाता था। घुड़सवार और पैदल सैनिकों की तुलना में हस्तिदल छोटा था। शेरशाह की सेना में 5 हजार हाथी थे। बंदूकचियों एवं तोपचियों की संख्या करीब 50 हजार थी। इस सेना के अतिरिक्त स्थानीय सूबेदारों एवं अफगान अमीरों की सेना की टुकड़ियाँ भी थीं जो आवश्यकतानुसार सुलतान की सहायता करती थीं। विश्वस्त सैनिकों की टुकड़ी राजधानी में शेरशाह के साथ रहती थी तथा बाकी सेना साम्राज्य के विभिन्न भागों में शिविरों एवं किलों में रहती थी।

शेरशाह ने सैनिक संगठन को प्रभावशाली बनाने के लिए अनेक उपाए किए। वह स्वयं सैनिकों की नियुक्ति करता और उनके प्रशिक्षण एवं रसद पर निगरानी रखता था। सैनिकों को नकद वेतन देने की व्यवस्था की गई। सैनिकों को कठोर अनुशासन में रखने के लिए प्रधान बख्शी एवं अन्य बख्शियों की नियुक्ति की जाती थी। सैनिकों की नियुक्ति में जागीरदारों द्वारा की जाने वाली बेईमानी पर नियंत्रण रखने के लिए हर सैनिक का खाता या हुलिया दर्ज करने की व्यवस्था की गई। इसी प्रकार, अलाउद्दीन खिलजी के ही समान शेरशाह ने घोड़ों के दागने की व्यवस्था भी की। शेरशाह की सैन्य व्यवस्था से संबद्ध अन्य पदाधिकारियों के नामों के विशय के विशय में स्पश्ट जानकारी नहीं मिलती है परन्तु इतना तो निश्चित ही है कि शेरशाह की सेना इतनी अधिक सक्षम थी कि वह अल्पकाल में ही एक विशाल और शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना कर सका।

बोध प्रश्न–2

1. शेरशाह के सैन्य संगठन पर दस पंक्तियाँ लिखिये।
2. निम्नलिखित कथनों में से कौन–सा सही है और कौन–सा गलत। सही कथन के सामने (√) तथा गलत कथन के सामने (×) का चिन्ह लगाये–

   i सरकारों का प्रमुख प्रान्तपति कहलाता था।

   ii शेरशाह ने एक स्थायी और विशाल सेना का संगठन किया।

   iii शेरशाह ने सैनिकों की सीधी भर्ती की शुरूआत की।

   iv जिलों को सरकार कहा जाता था।

1.5 गुप्तचर–व्यवस्था

साम्राज्य की आंतरिक एवं बाह्य सुरक्षा के उद्देश्य से शेरशाह ने एक कुशल गुप्तचर–व्यवस्था का भी संगठन किया। दारोगा–ए–डाक के अधीन योग्य एवं विश्वस्त गुप्तचरों का समूह तैयार किया गया जो राज्य की प्रत्येक महत्त्वपूर्ण घटना की सूचना सुलतान तक पहुँचाता था। ये गुप्तचर सभी महत्त्वपूर्ण स्थानों, नगरों और बाजारों में नियुक्त थे। ये सरकारी कर्मचारियों, व्यापारियों, जागीरदारों और दुश्मनों की गतिविधियों पर सदैव नजर रखते थे। इनका उपयोग शत्रुओं की सैनिक गतिविधियों की टोह लेने के लिए भी किया जाता था। अनेक युद्धों को जीतने एवं विद्रोहों को दबाने में शेरशाह के गुप्तचर विभाग ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1.6 पुलिस व्यवस्था

न्याय के साथ राज्य में शांति व्यवस्था की स्थापना के लिए पुलिस बल की भी व्यवस्था की गई। पुलिस संबंधी कार्य सैनिक अधिकारियों को ही सौंपे गए। अलग से पुलिस–बल का गठन नहीं किया गया। अपने–अपने क्षेत्रों में फौजी अधिकारी अपराधों की रोकथाम करते एवं शांति व सुरक्षा का वातावरण तैयार करते थे। सूबा, सरकार, परगना और गाँवों के अधिकारी अपने–अपने इलाके में शांति–व्यवस्था के लिए उत्तरदायी थे। शेरशाह ने इन अधिकारियों को स्पश्ट आदेश दे रखा था कि वे जनता को किसी भी प्रकार का कश्ट नहीं होने दें। अपराध होने और अपराधी का पता नहीं लगने पर क्षेत्र विशेश के अधिकारी को ही दोशी मानकर दंडित किया जाता था। इस कड़ी व्यवस्था के चलते राज्य में अपराधों की संख्या बहुत कम हो गई। उस समय की तत्कालीन स्थिति का वर्णन करते हुए अब्बास खाँ शेरवानी लिखता है, ''एक जर्जर बूढ़ी औरत भी अपने सिर पर जेवरात की टोकरी रखकर जा सकती थी और शेरशाह की सजा के डर के कारण कोई चोर या लुटेरा उसके नजदीक नहीं जा सकता था।''

1.7 न्याय व्यवस्था

शेरशाह के प्रशासन की एक प्रमुख विशेशता निश्पक्ष और शीघ्र न्याय करना था। एक न्यायप्रिय शासक होने के कारण उसने प्रशासन में न्याय के महत्व को स्वीकार किया। वह न्याय को एक धार्मिक कर्तव्य मानता था इसके क्रियान्वयन के लिए वह सदैव तत्पर रहता था। अपनी न्याय सम्बन्धी धारणा के अनुरूप शेरशाह ने न्याय की उत्तम व्यवस्था की। न्यायिक अधिकारियों के रहते हुए भी वह स्वयं ही न्याय के संपादन में गहरी अभिरूचि रखता था। वह न्यायिक व्यवस्था का सर्वोच्च अधिकारी था। प्रत्येक बुधवार को वह खुले दरबार में बैठकर न्याय करता था। उसकी न्यायिक नीति समानता के सिद्धान्त पर आधारित थी। वह कानून भंग करने वालों को कठोर दंड देता था। सभी अपराधी, चाहे वह शेरशाह के अपने संबंधी ही क्यों न हों, कठोर दंड के भागी बनते थे। इतिहासकार एरस्किन का कहना है कि ''शेरशाह ने अपने बड़े पुत्र आदिल खाँ को भी एक सामान्य अपराधी की तरह दंडित किया जिसमें वह

जरा भी नहीं हिचकिचाया।

शेरशाह ने राज्य में अनेक दीवानी और फौजदारी न्यायालय स्थापित किए। प्रान्तों में काजी एवं मुंसिफ–ए–मुंसिफान न्याय की व्यवस्था देखा करते थे। परगनों में दीवानी के मुकदमें अमीन सुना करता था और फौजदारी के मुकदमें काजी या मीर–ए–अदल तय किया करता था। गाँवों में मुकद्दम की सहायता से ग्राम पंचायतें न्याय का कार्य किया करती थीं। राजधानी में मुख्य काजी की अदालत होती थी और इनके ऊपर स्वयं सुलतान होता था जिसका निर्णय अंतिम होता था। अपराध एवं अपराधियों पर नियंत्रण रखने के लिए कठोर दंड की व्यवस्था की गई थी (कैद, जुर्माना, अंग–भंग, फाँसी इत्यादि)। इन कठोर दंडों द्वारा अपराधों पर नियंत्रण पा लिया गया था। शेरशाह का कानून कुछ हद तक बर्बर एवं प्रतिशोध के सिद्धांतों पर आधारित था, परन्तु इससे सामान्य जनता को लाभ ही हुआ।

1.8 राजस्व–व्यवस्था

शेरशाह ने राज्य की आर्थिक व्यवस्था को भी सुदृढ़ करने का प्रयास किया। वह इस बात को अच्छी तरह समझता था कि एक सुदृढ़ अर्थव्यवस्था के अभाव में कोई भी राज्य स्थायी एवं शक्तिशाली नहीं हो सकता। इसलिए, उसने भूमि एवं राजस्व व्यवस्था, मुद्रा एवं व्यापार–वाणिज्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए।

शेरशाह का राज्यकाल भू–राजस्व व्यवस्था और किसानों की स्थिति में सुधार के लिए अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण है। राज्य की आमदनी निश्चित करने एवं किसानों की दशा में सुधार लाने के लिए उसने अनेक उपाय किए गए। राज्य की आमदनी का मुख्य स्रोत लगान ही था, परन्तु इसके अतिरिक्त लावारिस संपत्ति, व्यापारिक कर, टकसाल, नमक, चुंगी, जजिया, खम्स से भी राज्य को आमदनी होती थी। राज्य को इसके अतिरिक्त उपहारों, नजरानों एवं युद्ध में लूटी गई संपत्ति से भी आमदनी होती थी।

शेरशाह ने भू–राजस्व व्यवस्था एवं कृशि में सुधार के लिए अनेक उपाय किए। बिहार में जागीरदार के रूप में कार्य करते हुए वह प्रचलित भू–राजस्व व्यवस्था एवं कृशि की असंतोशजनक परिस्थिति से परिचित था। इसलिए, उसने शासक बनने के पश्चात् इन त्रुटियों को दूर करने का प्रयास किया। उसने भू–राजस्व–व्यवस्था को लागू करते समय यह ध्यान में रखा कि प्रस्तावित व्यवस्था से न तो राज्य को ही हानि हो और न किसानों का अनावश्यक शोशण हो, शेरशाह का उद्देश्य ऐसी व्यवस्था को लागू करना था जिससे राज्य और किसान दोनों ही लाभान्वित हो सकें।

लगान की राशि निश्चित करने के उद्देश्य से शेरशाह ने राज्य की समस्त भूमि की माप करवाई। तत्पश्चात् नापी हुई भूमि को, बीघे की इकाई मानते हुए विभाजित किया गया तथा प्रत्येक किसान के साथ **'इकरारनामा'** किया जाता था जिसे **'कबूलियत'** कहते थे। प्रत्येक किसान के 'कबूलियत' पर लगान की दर लिखी जाती थी। सभी कृशि योग्य भूमि

को उपज के आधार पर क्रमशः उत्तम, मध्यम और निम्न श्रेणी में विभक्त किया गया। तीनों प्रकार की जमीनों में प्रति बीघा उपज के आधार पर उस भूमि की औसत पैदावार निश्चित की गई। उपज का एक तिहाई भाग लगान निश्चित किया गया। दरों की एक नई प्रणाली राय निकाली गई जिसके अनुसार अलग–अलग किस्मों पर राज्य के भाग की दर अलग–अलग तय की गई। विभिन्न क्षेत्रों के बाजार भाव के अनुसार दर की कीमत तय की गई। इस प्रकार, शेरशाह ने बीघेवार, जिन्सवार भूमि कर निश्चित किया। लगान की दर की सूची राजस्व पदाधिकारियों को देकर उसी के मुताबिक उन्हें लगान वसूलने का निर्देश दिया गया। किसानों को लगान नकद अथवा अनाज के रूप में देने की छूट थी तथापि सरकार अपनी सुविधा और मुनाफे के लिए नकद लगान ही लेना चाहती थी। किसानों को वर्श में दो बार लगान अदा करना पड़ता था। किसानों को लगान के अतिरिक्त जरीबाना (भूमि की नाप के लिए) और महासिलाना (लगान कर्मचारियों के वेतन के रूप में) भी देना पड़ता था। इसकी दर 2.5 प्रतिशत से 5 प्रतिशत तक तय की गई थी। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक विपत्ति की स्थिति में किसानों को सहायता पहुँचाने के लिए एक सुरक्षित सहायता कोश की स्थापना की गई। इस कोश में प्रत्येक किसान को प्रति बीघा 200 बहलोली टंका की दर से धन कर के रूप में देना पड़ता था।

शेरशाह ने भूमि पैमाईश एवं लगान की जो व्यवस्था निश्चित की वह पूरे साम्राज्य में समान तौर पर लागू नहीं की जा सकी। साम्राज्य के अधिकांश भागों में यह व्यवस्था स्थापित की गई परन्तु मुल्तान, मालवा और राजपूताना में व्यवहारिक कठिनाइयों के कारण पुरानी लगान व्यवस्था को ही बना रहने दिया गया। शेरशाह के समय में लगान निश्चित करने की तीन प्रणालियाँ थीं– **गल्ला–बक्शी (बटाई), नश्क, मुकतई या कनकूत तथा नकद, जब्ती तथा जमाई।** गल्ला बक्शी अथवा बटाई तीन प्रकार की थी– **खेत बटाई, लैंक बटाई एवं रास बटाई।** खेत बटाई व्यवस्था के अधीन खेत बोने के बाद अथवा खड़ी फसल का ही विभाजन किसान और सरकार में हो जाता था। लैंक बटाई में अनाज को डंठलों से अलग किये बिना ही बाँट लिया जाता था। रास–बटाई में अनाज को भूसे से अलग कर तब विभाजन किया जाता था। नश्क, मुकतई अथवा कनकूत व्यवस्था के अंतर्गत खेत में खड़ी फसल को ही देखकर उपज का अनुमान लगा लिया जाता था तथा उसी के आधार पर लगान की राशि तय की जाती थी। यह व्यवस्था न तो सरकार के लिए ही लाभदायक थी और नही किसान के लिए। अनुमान के मुताबिक पैदावार नहीं होने पर दोनों को घाटा हो सकता था। राज्य और किसान के लिए सबसे सुविधाजनक व्यवस्था नकदी, जमाई अथवा जब्ती थी। इस व्यवस्था के अनुसार किसान और सरकार के बीच तीन वर्श या उससे अधिक अवधि के लिए प्रति बीघा प्रति वर्श की दर से लगान की राशि निश्चित कर दी जाती थी। किसान राज्य को निश्चित राशि ही देते थे, अतिरिक्त लाभ वे अपने पास रख लेते थे। लगान तय करने की तीनों प्रणालियों में सबसे अधिक प्रचलित नकदी व्यवस्था ही थी।

शेरशाह की भू–राजस्व व्यवस्था की अनेक इतिहासकारों ने आलोचना की थी। शेरशाह की व्यवस्था में अनेक त्रुटियाँ थीं। इस व्यवस्था का सबसे दोशपूर्ण पहलू यह था कि उत्तम कोटि की जमीन के मालिक को सबसे कम और निम्न श्रेणी की जमीन के मालिक को सबसे अधिक लगान देना पड़ता था। इससे राज्य और किसान दोनों को हानि होती थी। लगान के अतिरिक्त किसानों पर अन्य करों का बोझ भी डाल दिया गया था, जिसका कोई औचित्य नहीं था। किसानों को अनेक सुविधाएँ प्रदान करने के बावजूद शेरशाह किसानों को जागीरदारों के अत्याचारों से पूर्णतः मुक्त नहीं करवा सका। लगान–व्यवस्था में व्याप्त भ्रश्टाचार और घूसखोरी की प्रथा को भी वह पूरी तरह समाप्त नहीं कर सका। सबसे बड़ी बात यह थी कि वह कृशि के समुचित विकास के लिए सिंचाई की कोई व्यवस्था नहीं करवा सका।

इन त्रुटियों के बावजूद शेरशाह की भू–राजस्व व्यवस्था प्रचलित लगान व्यवस्था में एक महत्त्वपूर्ण कदम था। शेरशाह ने किसानों और राज्य दोनों के हितों की रक्षा करने का प्रयास किया। उसने किसानों को सुरक्षा प्रदान करने का पूरा प्रयास किया। संभवतः फिरोज तुगलक के अतिरिक्त अन्य किसी मध्यकालीन भारतीय शासक ने किसानों के प्रति उतनी हमदर्दी नहीं दिखाई जितनी कि शेरशाह ने। शेरशाह की लगान व्यवस्था का महत्व इस बात में निहित है कि उसने लगान की दरों को निश्चित किया, किसानों और राज्य के अधिकारों और कर्तव्यों को सुनिश्चित किया एवं दोनों के हितों के बीच तारतम्य स्थापित करने का प्रयास किया। सबके साथ न्याय करना ही उसका मुख्य ध्येय था। शेरशाह के राजस्व सम्बन्धी सुधार आगे अकबर के लिए मार्गदर्शक बने।

बोध प्रश्न–3

1. शेरशाह की राजस्व व्यवस्था पर दस पंक्तियाँ लिखिये।
2. निम्नलिखित कथनों में से कौन–सा सही है और कौन–सा गलत। सही कथन के सामने (√) तथा गलत कथन के सामने (×) का चिन्ह लगाये–

   i राज्य की आमदनी का मुख्य स्रोत लगान था।

   ii भूमि को उपज के आधार पर तीन श्रेणियों में बांटा गया।

   iii शेरशाह ने प्रत्येक किसान से सीधा इकरारनामा किया था।

   iv शेरशाह से पहले भूमि को नापने की प्रथा थी।

1.9 सार्वजनिक हित के कार्य

सड़कों का निर्माण

शेरशाह ने अपने कार्यकाल में सामान्य जनता के हित के लिए भी कार्य किये। उसका शासनकाल आवागमन के साधनों के सुधार के लिए विख्यात है। सड़कों एवं सरायों की

मरम्मत एवं निर्माण का कार्य प्रशासनिक सुविधा, व्यापारिक सुविधा एवं जनहित के कल्याण की भावना के अतिरिक्त सैनिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भी किया गया। आवागमन की सुविधा रहने से साम्राज्य के दूरस्थ इलाकों में सुगमता से नियंत्रण बनाए रखा जा सकता था तथा युद्ध की स्थिति में सेना को शीघ्रता से विभिन्न छावनियों से युद्धस्थल तक ले जाया जा सकता था। इसलिए, शेरशाह ने सड़कों के निर्माण एवं मरम्मत पर विशेश ध्यान दिया। उसने प्राचीन राजमार्ग (ग्रैंड–ट्रंक रोड) जो सोनारगाँव से पेशावर तक जाती थी, उसकी मरम्मत करवाकर उसे पुनः आवागमन के योग्य बनाया। इसके अतिरिक्त आगरा से मांडू, जोधपुर और चित्तौड़ तक जाने वाली सड़कों का निर्माण हुआ तथा इसे गुजरात के बंदरगाहों से मिली सड़कों से जोड़ा गया। शेरशाह ने मुल्तान से लाहौर तक जाने वाली सड़क का भी निर्माण करवाया। इनके अतिरिक्त अन्य छोटी सड़के बनवाकर समस्त साम्राज्य में सड़कों का एक जाल–सा बिछा दिया गया। इतना ही नहीं, यात्रियों की सुविधा के लिए मौर्य सम्राट अशोक की ही तरह शेरशाह ने भी सड़कों के किनारे छायादार एवं फलदार वृक्ष लगवाए।

1.9.1 सरायों का निर्माण

प्रमुख सड़कों पर प्रत्येक दो कोस की दूरी पर सरायों का निर्माण करवाया गया। इन सरायों में यात्रियों के खाने–पीने, उनके ठहरने और उनकी सुरक्षा की भरपूर व्यवस्था की गई। सरायों में हिंदुओं–मुसलमानों के लिए अलग–अलग व्यवस्था की गई। इतिहासकार अब्बास खाँ के अनुसार, इन सरायों में जो भी ठहरता था, उसे उसकी हैसियत के मुताबिक सरकारी सुविधा उपलब्ध कराई जाती थी। शेरशाह ने करीब 1700 सरायों का निर्माण करवाया। सराय की व्यवस्था एवं सुरक्षा के लिए **शहना** नामक अधिकारी नियुक्त किए गए। सरायों का खर्च सरकारी अनुदान एवं उससे संलग्न भूमि की उपज की आमदनी से चलता था। सरायों के निकट बस्तियाँ बसाने का भी प्रयास हुआ। ये बस्तियाँ व्यापारिक मंडियों में परिणित हो गईं। सरायों का प्रयोग डाक–चौकियों एवं सैनिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भी किया जाता था। ये डाक–चौकियाँ विभिन्न सरायों में बनवाई गईं। प्रत्येक डाक–चौकी पर (सराय) दो घुड़सवार हरकारे नियुक्त किए गए। एक डाक–चौकी का हरकारा किसी भी आवश्यक सूचना को शीघ्रता से अगली चौकी तक पहुँचा देता था। फलतः सुलतान को आवश्यक सूचनाएँ शीघ्र ही मिल जाती थीं।

बोध प्रश्न–4

1. शेरशाह के सार्वजनिक हित के कार्यो पर दस पंक्तियाँ लिखिये।
2. निम्नलिखित कथनों में से कौन–सा सही है और कौन–सा गलत। सही कथन के सामने (√) तथा गलत कथन के सामने (×) का चिन्ह लगाये–

   i शेरशाह ने सड़कों के निर्माण एवं मरम्मत पर विशेश ध्यान नहीं दिया।

ii ग्रांड ट्रैंक रोड का निर्माण शेरशाह ने करवाया।

iii दरोगा–ए–डाक के अधीन योग्य एवं विश्वस्त गुप्तचरों की मंडली तैयार की गई।

iv शेरशाह ने 1600 सरायों का निर्माण कराया।

1.10 सारांश

शेरशाह सूरी एक योग्य प्रशासक था। एक सैनिक के रूप में अपना जीवन आरम्भ कर वह उन्नति करते हुए दिल्ली के शासक के पद पर प्रतिश्ठित हुआ और लगभग पाँच वर्शो तक उसने कुशलतापूर्वक शासन किया। वह एक धर्मनिश्ठ सुन्नी मुसलमान था किन्तु अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति सहिश्णु था। उसने हिन्दुओं को भी अनेक सुविधायें प्रदान की तथा उन्हें अनेक करों से मुक्त कर दिया। योग्यता के आधार पर हिन्दुओं को भी शाही सेवा में नियुक्त किया गया। उसने प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए उसे अनेक विभागों में विभक्त किया। प्रशासन के प्रत्येक कार्य पर वह स्वयं अपनी निगाह रखता था। उसने राजस्व व्यवस्था से सम्बन्धित अनेक सुधार किये और अपनी प्रजा के हित के लिये सार्वजनिक जन कल्याण के कार्य भी करवाये। उसने साम्राज्य की रक्षा के लिये एक नियमित सेना की स्थापना की। साथ ही एक मजबूत गुप्तचर व्यवस्था का संगठन भी किया। यह कहने में अतिश्योक्ति न होगी कि शेरशाह ने अपने प्रशासकीय गुणों एवं आर्थिक सुधारों के द्वारा भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। यदि उसके प्रशासकीय एवं सैनिक सफलताओं पर दृश्टिपात करे तो इस बात को स्वीकार करना पड़ेगा कि **''यदि उसे समय दिया गया होता तो वह अपने राजवंश को संस्थापित करने में सफल होता तथा भारतीय इतिहास के मंच पर महान मुगलों का उदय न हो पाता।''**

शेरशाह निःसंदेह एक योग्य, गुणी, कूटनीतिज्ञ व अत्यधिक प्रशासकीय क्षमता वाला व्यक्ति था। वह पहला मुसलमान सुलतान था जिसने अपनी प्रजा की भलाई के लिए कार्य किया। उसमें यह देखने की बुद्धि थी कि सरकार लोकप्रिय होनी चाहिए और राजा को लोगों की भलाई के लिए शासन करना चाहिए। भूमिकर उचित आधार पर निश्चित होना चाहिए और देश के आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देना चाहिए।

हैवेल ने लिखा है कि **''सैनिक और असैनिक मामलों में शेरशाह ने अद्भुत योग्यता का प्रदर्शन किया और शासन में छोटे–छोटे विशयों पर व्यक्तिगत ध्यान देकर उसने सम्पूर्ण भारत में पांच वर्श के अल्पकाल में ही सुव्यवस्थित प्रशासन व्यवस्था स्थापित कर दी।''**

1.11 शब्दावली

निरंकुश – जिस पर किसी का अंकुश न हो

मातहत – किसी के अधीन कार्य करने वाला

परिणत – बदलना

एकतंत्रीय – एक ही व्यक्ति का शासन

परगना – तहसील

1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1. देखों भाग 1.2
2. (i) √ (ii) × (iii) √ (iv) √

बोध प्रश्न–2

1. देखों भाग 1.4
2. (i) × (ii) √ (iii) √ (iv) √

बोध प्रश्न–3

1. देखों भाग 1.8
2. (i) √ (ii) √ (iii) √ (iv) ×

बोध प्रश्न–4

1. देखों भाग 1.9
2. (i) × (ii) √ (iii) √ (iv) ×

इकाई–द्वितीय

मुगलों का शासन प्रबंधन– केन्द्रीय, प्रांतीय, स्थानीय, प्रशासन, भू–राजस्व व्यवस्था

इकाई की रूपरेखा–

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 मुगल प्रशासन की विशेशताएं

2.3 मुगलों का केन्द्रीय, प्रांतीय एवं स्थानीय प्रशासन

2.3.1 केन्द्रीय प्रशासन

2.3.2 प्रांतीय प्रशासन

2.3.3 स्थानीय प्रशासन

2.4 मुगलों की न्याय–व्यवस्था

2.5 मुगलों की सैन्य व्यवस्था

2.6 मुगलों की भू–राजस्व व्यवस्था

2.7 सारांश

2.8 शब्दावली

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.10 सहायक ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

1526 ई0 में पानीपत के प्रथम युद्ध में बाबर ने भारत के लोदी वंश के शासक इब्राहीम लोदी को पराजित करके 'मुगल–वंश' की स्थापना की। इस वंश के शासकों ने भारत में लगभग 200 वर्शों तक शासन किया, जिसकी सफलता का प्रमुख कारण मुगलों की श्रेश्ठ प्रशासन व्यवस्था थी। इस इकाई के माध्यम से आप जानेंगे–

1. मुगल प्रशासन की प्रमुख विशेषतायें
2. मुगलों का केन्द्रीय, प्रांतीय एवं स्थानीय प्रशासन
3. मुगलों की न्याय, सैन्य एवं भू–राजस्व व्यवस्था

2.1 प्रस्तावना

मुगलकाल भारतीय इतिहास में न सिर्फ एक विशाल साम्राज्य की स्थापना के लिये विख्यात है वरन् इसके साथ ही साथ मुगलों ने अपने शासन को मजबूत बनाने के लिये एक सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था की स्थापना की। प्रारम्भिक मुगल शासक बाबर और हुमायूँ राज्य की स्थापना के कार्य में व्यस्त रहे, जिसके कारण वह प्रशासनिक व्यवस्था पर अधिक ध्यान नहीं दे पाये लेकिन अकबर ने गद्दी पर बैठने के बाद मुगल प्रशासन की बारिकियों को समझा और उसे मजबूत आधार प्रदान किया। अकबर ने भू–राजस्व के क्षेत्र में भी अनेक सुधार किये। उसके बाद के मुगल शासकों जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब ने भी लगभग उसकी नीतियों को अपनाया जिससे मुगल शासन सुव्यवस्थित बना रहा।

2.2 मुगल प्रशासन की विशेशतायें

मुगलकालीन प्रशासन का स्वरूप प्रचलित भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था से भिन्न था। यह तुर्क–अफगान प्रशासन का प्रतिरूप भी नहीं था। वास्तव में यह भारतीय और ईरानी प्रशासनिक व्यवस्था का सम्मिश्रण था। मुगलों ने राजतंत्रात्मक सत्ता की स्थापना की जिसमें प्रजातांत्रिक मूल्यों के लिए कोई स्थान नहीं था किन्तु अपने राजनैतिक हितों को सर्वोपरि स्थान देते हुए मुगलों ने प्रजा के हित के लिये कार्य किया। सर्वशक्तिशाली होते हुये भी उन लोगों ने स्वेच्छाचारिता की नीति नहीं अपनायी।

2.3 मुगलों का केन्द्रीय प्रशासन, प्रांतीय एवं स्थानीय प्रशासन

2.3.1 केन्द्रीय प्रशासन

केन्द्रीय प्रशासन में बादशाह तथा उसके मन्त्री आते थे।

बादशाह– बादशाह राज्य का सर्वेसर्वा था। राज्य की प्रशासनिक, विधायी एवं न्यायिक शक्तियाँ उसमें निहित थीं। वही सर्वोच्च सेनापति तथा न्यायधीश होता था। बादशाह निरंकुश होते हुए भी जनकल्याणकारी थे। अकबर ने प्रजा की भलाई के लिये हर सम्भव कार्य किये, जबकि औरंगजेब ने इसकी उपेक्षा की। बादशाह की इच्छा ही कानून थी। व्यवहार में बादशाह प्रजा की आवश्यकताओं, एवं प्रचलित रीति–रिवाजों को ध्यान में रखते थे तथा सरदारों एवं धार्मिक नेताओं के विचारों का सम्मान करते थे। जहाँगीर को छोड़कर सभी मुगल बादशाह निरन्तर राजकार्य में व्यस्त रहते थे। वे अपने आपकों ईश्वर का प्रतिनिधि समझते थे तथा जनता से अपनी आज्ञाओं के पालन की अपेक्षा करते थे। अकबर ने उदार धार्मिक नीति अपनाते हुए राष्ट्रीय एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया, जबकि औरंगजेब ने धर्मान्ध नीति अपनाते हुए इस्लामी राज्य की स्थापना का प्रयास किया।

मन्त्रिमण्डल– शासन संचालन में बादशाह को सलाह देने के लिये कुछ मन्त्री होते थे। बादशाह इनकी सलाह का आदर करता था, किन्तु वह उसे मानने के लिये बाध्य नहीं था।

मोन्सर्ट के शब्दों में, "कभी–कभी बादशाह मन्त्रिमण्डल के परामर्श पर अपना निर्णय बदल भी लेता था, परन्तु मन्त्रिमण्डल बादशाह को किसी बात को मानने के लिये विवश नहीं कर सकता था।" केन्द्रीय शासन में मुख्य रूप से 4 से 6 मन्त्री होते थे, जो औरगजेब के समय में 8 हो गये थे।

वजीर– मुगलकाल में प्रधानमन्त्री को वजीर, वकील, वजीर–ए–आला, वकील–ए–मुतलक आदि कहा जाता था। वह वित्त तथा राजस्व–विभाग का प्रधान होता था। उसका कार्य अधीनस्थ विभागों का निरीक्षण करना, बादशाह की अनुपस्थिति में शासन संचालित करना, जन–कल्याणकारी कार्यों का निरीक्षण करना, सैनिक अभियानों का नेतृत्व करना, लगान एवं वसूली संबंधी समस्याओं का समाधान करना, पदाधिकारियों की नियुक्ति, पदोन्नति व पदच्युति में परामर्श देना आदि थे एवं उसके सहयोग हेतु दो मन्त्री होते थे–

(क) दीवान–ए– खालसा, जो लगान इकट्ठा करता था, एवं

(ख) दीवान–ए–तान, जो जागीर की भूमि के लिये उत्तरदायी था।

दीवान– दीवान का वित्त एवं राजस्व–विभाग पर नियन्त्रण होता था। वजींर को कभी–कभी दीवान भी बना दिया जाता था। दीवान का कार्य लगान निश्चित करना, वसूल करना, राज्य की आय–व्यय का हिसाब रखना एवं अपने विभाग और प्रान्तीय दीवानों के कार्यों के सम्बन्ध में बादशाह को सूचित करना आदि थे। समस्त साम्राज्य में भूमि–कर से सम्बन्धित आदेश वही जारी करता था। उसकी सहायता के लिये कई छोटे–छोटे दीवान होते थे।

मीरबख्शी– मीरबख्शी सैन्य मन्त्री था। उसका प्रमुख कार्य सैनिकों की भर्ती करना, उन्हें अनुशासित करना, उनकी परीक्षायें लेना, अभियानों का नेतृत्व करना, घोड़ों का निरीक्षण करना, बादशाह के समक्ष सैनिकों की सूची प्रस्तुत करना, शाही महल के पहरेदार नियुक्त करना, दुर्गों की रक्षा करना, पदाधिकारियों तथा मनसबदारों के वेतन पत्रों पर हस्ताक्षर करना तथा युद्धकाल में सैनिकों को वेतन देना आदि थे।

सद्र–ए–सुदूर– यह धर्म–विभाग का प्रधान होता था। उसका प्रमुख कार्य इस्लामी शिक्षा को प्रोत्साहित करना, सम्राट तथा कर्मचारियों को कुरान के अनुसार चलने के लिये प्रोत्साहित करना, मुस्लिम विद्वानों को आर्थिक सहायता देना, धार्मिक एवं दान के कार्यों में सम्राट को सलाह देना, प्रान्तीय सद्रों पर नियन्त्रण रखना, इस्लामी कानून की व्याख्या करना तथा दान की भूमि का निरीक्षण करना आदि था।

काज़ी–उल–कज़ात– यह न्याय–विभाग का प्रधान होता था। इसका प्रमुख कार्य न्याय की समुचित व्यवस्था करना था। अधीनस्थ कर्मचारियों पर नियन्त्रण रखना, इस्लामी कानून के अनुसार न्याय करना, काज़ियों को नियुक्त करना तथा न्यायिक मामलों में बादशाह को परामर्श देना आदि इसके प्रमुख कार्य थे। इसके अतिरिक्त अन्य काजियों पर भी इसका पूर्ण नियन्त्रण होता था। काजियों की नियुक्ति, पदोवनति तथा वेतनवृद्धि का अधिकार इसी को था।

खानेसामॉ या मीरसामॉ– इसका मुख्य कार्य बादशाह के नौकरों, शाही महल के भोजन भण्डार, वस्तुओं का प्रबन्ध करना, शाही घराने के दैनिक व्यय का ध्यान रखना एवं उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करना आदि था। इस पद पर विश्वस्त व्यक्ति ही नियुक्त होते थे। यह युद्ध के समय बादशाह के साथ ही रहता था।

मुहातसिब– मुहातसिब का प्रमुख कार्य इस्लाम के नियमों का पालन करवाना, उनका उल्लंघन करने वालों को दण्डित करना, शराब व जुए के अड्डों को नष्ट करना, हिन्दू मन्दिरों को नश्ट करना एवं वस्तुओं के भावों तथा बाटों का निरीक्षण करना आदि था।

अन्य मन्त्री– उपर्युक्त मन्त्रियों के अतिरिक्त दारोगा–ए–डाक चौकी (गुप्तचर विभाग का प्रधान), दारोगा–ए–तोपखाना (शाही बन्दूकों व तोपों को बनवाना तथा गोला–बारूद का प्रबन्ध करना) आदि मन्त्री भी होते थे।

2.3.2 प्रान्तीय प्रशासन

मुगल साम्राज्य अनेक प्रान्तों में विभक्त था। अकबर के समय साम्राज्य में 18 व औरंगजेब के समय 21 प्रान्त थे। प्रान्तों के प्रमुख अधिकारी निम्न थे–

सूबेदार अथवा सिपहसालार– प्रान्तीय शासन का प्रमुख सूबेदार कहलाता था। बादशाह इस पद पर बहुत ही विश्वसनीय व्यक्तियों अथवा शहजादों को नियुक्त करता था। सूबेदार का प्रमुख कार्य प्रान्त में शान्ति एवं व्यवस्था बनाये रखना, प्रान्त की राजधानी में दरबार लगाना, निष्पक्ष न्याय करना, जनकल्याणकारी कार्य करना, कृशि, व्यापार व उद्योगों को प्रोत्साहित करना, लगान वसूली में सहायता करना आदि थे। सूबेदार प्रान्त में सर्वोच्च सैनिक अधिकारी भी होता था तथा उसके पास अपनी सेना भी होती थी, जिससे वह विद्रोहों को दबाता था एवं बादशाह को सहायता देता था।

दीवान– दीवान सूबेदार से स्वतन्त्र होता था। उसे बादशाह केन्द्रीय दीवान की सलाह से नियुक्त करता था। दीवान तथा सूबेदार एक–दूसरे पर नियन्त्रण रखते थे। दीवान का प्रमुख कार्य प्रान्तीय आय–व्यय का हिसाब रखना, लगान निर्धारित करना तथा उसकी वसूली के लिए अधिकारी नियुक्त करना, दीवानी मुकदमों का फैसला करना, कृषकों को सहायता देना एवं कृषि को प्रोत्साहित करना, प्रान्तीय खजाने की व्यवस्था करना, अन्य विभागों पर नियन्त्रण रखना तथा दीवान कागजात केन्द्रीय दीवान के पास भेजना आदि था।

काजी– काजी धर्म–विभाग का प्रमुख होता था। वह बादशाह द्वारा मुख्य सद्र के परामर्श से नियुक्त किया जाता था। वह प्रान्त में वही कार्य करता था, जो केन्द्र में मुख्य सद्र काजी करता था। काजी प्रान्त के न्याय–विभाग का प्रधान होता था। वह फौजदारी मुकदमों का निर्णय करता था तथा अधीनस्थ काजियों पर नियन्त्रण रखता था। इसके अतिरिक्त इस्लाम के नियमानुसार धार्मिक प्रश्नों के उत्तरों का समाधान भी वही करता था।

बख्शी– यह आमिल का समकक्षी या प्रतिद्वन्दी होता था। इस पद पर ऐसे व्यक्ति को नियुक्त किया जाता था जो कि हिसाब–किताब एवं लेखन कला में प्रवीण होता था, इसका प्रमुख कार्य कृशि योग्य भूमि एवं ऊसर भूमि का वार्शिक आय–व्यय का विवरण सरकार को भेजना था। बख्शी बादशाह द्वारा मीरख्शी के परामर्श पर नियुक्त किया जाता था। उसके वे ही कार्य थे, जो केन्द्र में मीर बख्शी के थे।

कोतवाल– कस्बे का प्रमुख अधिकारी कोतवाल होता था, जिसके प्रमुख कार्य जनता के जीवन एवं धन की रक्षा करना, शान्ति व व्यवस्था बनाये रखना, अपराधियों को पकड़ना, लावारिस सम्पत्ति पर का प्रबन्ध करना, सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न करना, वस्तुओं के भाव तथा नाप–तोल पर नियन्त्रण रखना, शमशान की भूमि, कब्रिस्तान व बूचड़खाने की व्यवस्था करना आदि थे। उसकी सहायता हेतु अन्य कर्मचारी भी होते थे।

अन्य अधिकारी– वाकया नवीस एवं सवानह नवीस का मुख्य कार्य सम्राट को प्रान्तीय घटानाओं के सम्बन्ध में गुप्त सूचना देना था। कोतवाल नगर का पुलिस अधिकारी होता था।

सरकारों (जिलों) की शासन–व्यवस्था

मुगल प्रान्त कई जिलों या सरकारों में विभक्त होता था। सरकार के प्रमुख अधिकारी निम्न थे–

फौजदार– यह सरकार का प्रमुख अधिकारी था तथा आधुनिक जिलाधीश के समान था। यह सरकार में वही कार्य करता था, जो सूबेदार प्रान्त में करता था।

अमल गुजार– अमल गुजार के प्रमुख कार्य–भूमि की पैमाइश करवाना, कृषि को प्रोत्साहित करना एवं किसानों की स्थिति सुधारना, उच्च अधिकारियों को कृषि की स्थिति एवं अनाज के भावों से परिचित करवाना आदि था।

बितिक्ची तथा खजानेदार– बितिक्ची का प्रमुख कार्य लगान सम्बन्धी रिकॉर्ड तैयार करना एवं खजानेदार का कार्य लगान में वसूली की गयी राशि को सरकारी कोष में सुरक्षित रखना था।

2.3.3 स्थानीय प्रशासन

परगनों का शासन प्रबन्ध– सरकार अनेक परगनों अथवा महाल में विभक्त थी, जिसके प्रमुख अधिकारी निम्न थे–

शिकदार– यह परगने का मुख्य अधिकारी था। इसका प्रमुख कार्य परगने में शान्ति एवं व्यवस्था बनाये रखना था यह परगने में फौजदारी मुकदमों का निर्णय भी न्यायाधीश के समान करता था। यह परगने में वही कार्य करता था, जो प्रान्त में सूबेदार करता था।

आमिल– यह परगने के राजस्व विभाग का प्रधान होता था। जिसका प्रमुख कार्य भूमिकर

का निर्धारण तथा उसकी वसूली करना था। आमिल को कारकून भी मदद करते थे। यह परगने में वही कार्य करता था, जो प्रान्त में दीवान करता था।

कानूनगो– प्रत्येक परगने में कानूनगो नियुक्त किये गये कानूनगो परगने की उपज और भूमिकर की जमा तथा बकाया राशि का विवरण रखता था। इसकी सहायता के लिये अनेक पटवारी रखते थे।

फोतदार– सरकार के खजानेदार की भांति परगने में फोतदार की व्यवस्था थी जो कोशागार का प्रभारी होता था यह राजस्व के रूप में प्राप्त होने वाली धनराशि को एकत्रित कर उसे नियमित रूप से सरकार के मुख्यालय को भेजता था।

ग्राम प्रशासन–

परगना अनेक गाँवें में विभक्त था। गाँव प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी। ग्राम का प्रधान अधिकारी मुकद्दम होता था इसका प्रमुख कार्य लगान वसूल करना, गाँव में शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित करना तथा सरकारी कर्मचारियों की मदद करना था। ग्राम का दूसरा प्रमुख अधिकारी पटवारी कहलाता था यह भूमि के लगान से सम्बन्धित पत्राजात रखता था। यह राजस्व विभाग का सबसे छोटा अधिकारी होता था, लेकिन ग्राम प्रशासन में इसका महत्वपूर्ण स्थान रहता था। गाँव के झगडों का निर्णय बुद्धिमान व्यक्तियों की पंचायत किया करती थी तथा उसके फैसलों के विरूद्ध अपील की आवश्यकता कम ही होती थी। पंचायत के निर्णय का सम्मान किया जाता था।

बोध प्रश्न–1

1. मुगलों के केन्द्रीय प्रशासन पर 10 पंक्तियाँ लिखिये।
2. मुगलों के स्थानीय प्रशासन पर 10 पंक्तियाँ लिखिये।
3. निम्न में से सही कथन के सामने (√) तथा गलत कथन के सामने (X) का निशान लगाइये।

   (i) दीवान का वित्त एवं राजस्व विभाग पर नियन्त्रण होता था।

   (ii) मुहातसिब का प्रमुख कार्य इस्लाम के नियमों का पालन कराना था।

   (iii) शिकदार प्रान्त का प्रमुख अधिकारी होता था।

   (iv) काजी की नियुक्त दीवान के द्वारा की जाती थी।

2.4 मुगलों की न्याय–व्यवस्था

सल्तनतकालीन न्याय–व्यवस्था इस्लाम के नियमों पर आधारित थी। बाबर एवं हुमायूँ ने इसी प्रथा को जारी रखा। अकबर ने यद्यपि इस न्याय–व्यवस्था में कोई मौलिक सुधार

नहीं किये लेकिन उसने छोटे–छोटे सुधारों के द्वारा इस न्याय–व्यवस्था को अधिक उपयोगी बना दिया। अकबर ने इस्लामी कानून के क्षेत्र को सीमित कर दिया तथा देश के सामान्य एवं प्रचलित कानून को बढ़ावा दिया जिसके परिणामस्वरूप देश के सामान्य कानूनो के अनुसार अधिक मुकदमों की सुनवाई होने लगी। अकबर ने हिन्दू प्रजा के लिए न्यायधीशों की नियुक्ति की। इन सुधारों के अतिरिक्त अकबर के शासनकाल की न्याय–व्यवस्था वैसी ही रही जैसे मुगलकाल में प्रचलित थी।

मुगल काल में निम्नलिखित अदालतें होती थीं–

बादशाह की अदालत– मुगलकाल में बादशाह न्याय का प्रधान स्रोत था। बादशाह सप्ताह में एक दिन अर्थात् बुधवार को आम–न्यायालय में न्याय करता था। राजशाही अदालत में एक प्रधान काजी, दूसरे न्यायाधीश तथा अनेक धर्माचार्य उपस्थित रहते थे। अपील का अन्तिम न्यायालय बादशाह का न्यायालय ही था। प्रायः न्याय हेतु बादशाह की अदालत तक पहुँचना एक मुश्किल कार्य था क्योंकि बादशाह के पास न्याय करने के लिए समय का अभाव होता था।

प्रधान काजी की अदालत– बादशाह की अदालत के बाद प्रधान काजी की अदालत होती थी। प्रधान काजी अपनी अदालत में इस्लाम के नियमों के अनुसार न्याय किया करता था।

प्रान्तीय अदालतें– प्रत्येक प्रान्त में एक काजी की अदालत होते थी इस काजी की नियुक्ति प्रधान काजी करता था। गाँव, कस्बे एवं नगरों के मुकदमों की सुनवाई पंचायतों द्वारा भी की जाती थी।

अपराध एवं दण्ड विधान– इस्लामी धर्मशास्त्र के अनुसार तीन प्रकार के अपराध होते थे। (1) ईश्वरीय अपराध (2) राज्य अपराध (3) व्यक्तिगत अपराध। ईश्वरीय अपराध का सम्बन्ध ईश्वरीय नियमों के उल्लंघन से था।

मुगल काल में चार प्रकार के दण्ड थे–

(1) **हद**– यह दण्ड ईश्वरीय अपराध के लिए दिया जाता था। इस अपराध को कोई भी माफ नहीं कर सकता था। यह दण्ड मुख्यतः व्यभिचार, शराब पीने, चोरी, डकैती, हत्या तथा धर्म विरोधी कार्यों के लिए दिया जाता था।

(2) **ताजिर**– ताजिर दण्ड अपराधी को सुधारने के लिए दिया जाता था। इसके अन्तर्गत अपराधी को जैसे न्यायालय के द्वार तक घसीटना, देश निष्कासन, कान ऐंठना, कोड़े लगवाना, आदि शामिल था। ताजिर के अन्दर आये हुए अपराधों का दण्ड देना काजी की इच्छा पर निर्भर था।

(3) **किसास (बदला)**– किसास हत्या या गहरी चोट के बदले में दिया जाता था। चोट खाया हुआ व्यक्ति या फिर मृत व्यक्ति का निकटतम सम्बन्धी अपराधी से क्षतिपूर्ति

की माँग करता था। दोनों पक्षों के मान जाने पर मुकदमा काजी के पास भेजा दिया जाता था।

(4) **तशहीर (सार्वजनिक निन्दा)**– यह कानून हिन्दुओं के लिए लागू था। इस दण्ड के अन्तर्गत अपराधी को सिर मुड़वाना, गधे पर उल्टा मुँह करके (पूँछ की और) बैठाना, मुँह पर धूल या काला पोत देना अथवा जूतों की माला पहना कर बाजार में घुमाना, इत्यादि शामिल था। प्राणदण्ड अपराधी को जिन्दा जलवाकर, हाथी के नीचे कुचलवा कर, जहरीले सर्प से कटवाकर या गड्ढे में दबाकर दिया जाता था। ऋण अथवा दूसरे छोटे–छोटे अपराधों के लिए कारावास का दण्ड दिया जाता था।

बोध प्रश्न–2

1. मुगलों की न्याय व्यवस्था पर 10 पंक्तियाँ लिखिये।
2. निम्न में से सही कथन के सामने (√) तथा गलत कथन के सामने (X) का निशान लगाइये।

   (i) प्रधान काजी की नियुक्ति बादशाह द्वारा की जाती थी।

   (ii) हद ईश्वरीय अपराध के लिये दिया जाने वाला दण्ड होता था।

   (iii) तशहीर मुसलमानों पर लागू होने वाला कानून था।

   (iv) किसास दण्ड अपराधियों को सुधारने के लिये दिया जाता था।

2.5 मुगलों की सैन्य व्यवस्था

मुगलों ने सर्वदा एक बड़ी और शक्तिशाली सेना रखने का प्रयास किया। जिससे वह राज्य में शान्ति स्थापित कर सके लेकिन जब उत्तरकालीन मुगल बादशाह शक्तिशाली सेना रखने में असमर्थ हो गये तब उनकी सैन्य शक्ति कमजोर होने लगी। बाबर को भारत में तोपखाने के सफल प्रयोग को आरम्भ करने का श्रेय है और अकबर को मुगलों की सैनिक–व्यवस्था को सुचारू रूप से संगठित करने का श्रेय जाता है। मुगलों की स्थायी सेना पर्याप्त विशाल थी। यह अनुमान लगाया जाता है कि यदि शाही सेना, मनसबदारों की सेना तथा सूबेदारों एवं अधीनस्थ राजाओं की सेनाओं को सम्मिलित कर दिया जाता तो उसकी संख्या 44 लाख तक पहुँच सकती थी। मुगल सेना निम्नलिखित भागों में बँटी हुई थी।

घुड़सवार सेना– मुगल सेना के अन्तर्गत घुड़सवार, पैदल, हाथी एवं तोपखाना प्रभाग थे। बाबर की भारत विजय में घुड़सवार एवं तोपखाना प्रभाग का महत्वपूर्ण योगदान रहा। मुगल बादशाहों ने घुड़सवार सेना के संगठन पर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने सवारों का 'चेहरा' (हुलिया) लिखने तथा घोड़ो को दागने की प्रथा का पुनः प्रचलन किया। आधुनिक इतिहासकार

विलियम इरविन लिखते हैं कि ''मुगल सेना आधारभूत रूप में सवारों की सेना पर आधारित थी। मुगल घुड़सवार सेना का संगठन मनसबदारी व्यवस्था पर आधारित था जिसका आरम्भ अकबर ने किया तथा उसके पश्चात् के मुगल बादशाहों ने भी इसे अपनाया।''

पैदल सेना– मुगल काल में पैदल सैनिकों के लिए प्यादा, पायक आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। अबुल फ़जल के अनुसार पैदल सेना में बंदूकची, दरबान, खिदमतिया, मेवरा, पहलवान, पलकिया, शमशेरबाज़ इत्यादि सम्मिलित थे। 'खिदमतिया' अपराधी प्रवृत्ति के लोग थे जिन्हें शाहीमहल के आस–पास की सुरक्षा के लिए नियुक्त किया जाता था जो बड़ी निष्ठा के साथ अपने कर्तव्य का निर्वाह करते थे। 'मेवरा' मेवात के निवासी थे जो धावक एवं जासूसी के कार्यों में कुशल थे। 'पहलवान' कुश्ली लड़ने, पत्थर फेंकने आदि का कार्य करते थे। 'शमशेरबाज' तलवार चलाने में निपुण थे। 'पलकिया' अथवा कहार पालकी उठाते थे। परन्तु इस इन सब में बंदूकचियों का विशेष महत्व था जिन्हें अन्य पैदल सैनिकों की तुलना में अधिक वेतन दिया जाता था।

हस्ति सेना– अकबर ने हस्ति सेना के संगठन की ओर भी ध्यान दिया। उसके शासनकाल में सेना में हाथियों की संख्या पाँच हजार से अधिक थी। सैनिक प्रदर्शन के अवसर पर हाथी अग्रिम भाग में रखे जाते थे। साधारणतः युद्ध स्थल में सेनापति एक सुसज्जित हाथी पर बैठता था जिससे उसके अनुचर उसे देख सकें। हाथियों को युद्ध में शत्रुओं पर प्रहार करने तथा दुर्ग के प्रवेशद्वार को तोड़ने के लिए प्रशिक्षित किया जाता था। हाथियों का प्रयोग तोपों को ले जाने तथा अन्य वस्तुओं को ढोने में भी किया जाता था। युद्ध में हाथियों की सुरक्षा के लिए उन्हें लोहे के बख्तर पहनाए जाते थे।

तोपखाना– मुगल सेना का तोपखाना प्रभाग अत्यन्त महत्वपूर्ण था। बाबर की भारत विजय में उसके तोपचियों एवं बंदूकचियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। उसकी सेना में उस्ताद अली एवं मुस्तफा प्रमुख तोपची थे। इस प्रभाग का अध्यक्ष मीर आतिश अथवा दारोग़–ए–तोपखाना कहलाता था। अबुल फजल लिखता है कि अकबर के शासनकाल में बड़ी–बड़ी तोपों का निर्माण किया जाता था। जिनसें बारह मन के गोले दागे जाते थे। तोपों का नामकरण भी किया जाता था जैसे– ग़ाजी खाँ, शेरदहाड़, फ़तेहलश्कर, जहाँकुशा आदि। बड़ी तोपों को युद्धस्थल में ले जाने में कठिनाई होती थी अतः छोटी तोपों का निर्माण किया जाने लगा। छोटी तोपों में गजनाल (हाथी पर ले जाने वाली), नरनाल (सैनिकों द्वारा ले जाने वाली), शुतरनाल (ऊँट पर ले जाने वाली) आदि प्रसिद्ध थीं। मुगल काल में बंदूकों का भी बहुतायत से निर्माण किया जाने लगा था। अकबर के राज्यकाल में उस्ताद कबीर एवं हुसैन तोप एवं बंदूक के विशेषज्ञ थे। विदेशी चिकित्सक मनूची ने भी मुगल तोपखाना प्रभाग में कार्य किया था।

दुर्ग– मुगलों के सैनिक संगठन में क़िलों अथवा दुर्गों का भी प्रमुख स्थान था। इसी कारण मुगल बादशाहों ने सामरिक स्थानों पर क़िलों का निर्माण करवाया। केन्द्र तथा प्रमुख प्रान्तों

के मुख्यालयों में क़िलों का निर्माण किया गया। अकबर ने आगरा, इलाहाबाद एवं लाहौर में सुदृढ़ क़िलों का निर्माण करवाया था। शाहजहाँ ने दिल्ली में लाल क़िले का निर्माण करवाया था। क़िलों में पर्याप्त मात्रा में रसद की व्यवस्था रहती थी जिससे शत्रु द्वारा घेराव के समय उनका सफलतापूर्वक सामना किया जा सकता था।

नौसेना– अकबर ने मुगल नौसेना को विकसित करने का प्रयास किया। इस उद्धेश्य से उसने बड़ी एवं छोटी नावों का निर्माण करवाया था। उसके पश्चात् औरंगजेब ने भी नौसेना को सुदृढ़ करने की चेश्टा की। विदेशी यात्री मनूची लिखता है कि यूरोपीय सामुद्रिक डाकूओं द्वारा हज के लिए जाने वाले पोतों को लूटने के कारण बादशाह औरंगजेब ने नौसेना को शक्तिशाली बनाने का निश्चय किया। आसाम के अभियान में मुगल सेनापित मुअज्जम खाँ ने 323 युद्धपोतों का प्रयोग किया था। इस काल में मसुलीपट्टम, गुजरात, सूरत, खम्भात, लाहौर, थट्टा सतगाँव, हुगली, चटगाँव इत्यादि पोत–निर्माण के प्रमुख केन्द्र थे। नौसेना प्रभाग का अध्यक्ष 'मीर–ए–बहर' कहलाता था। जिसका प्रमुख कार्य सृद्दढ़ पोतों का निर्माण करवाना, अनुभवी मल्लाहों को नियुक्त करना, नदियों की देखभाल के लिए कुशल व्यक्तियों को नियुक्त करना तथा घाटों पर निर्धारित शुल्क वसूल करने की व्यवस्था करना था। वह सैनिक अभियानों के समय सैनिकों के नदी पार करने के लिए नावों की भी व्यवस्था करता था।

मनसबदारी व्यवस्था– अकबर से पूर्व मुगल सेना को मजबूत बनाने के लिये कोई प्रयास नहीं किये गये। अकबर ने यह महसूस किया कि साम्राज्य के विस्तार एवं शांति–सुव्यवस्था के लिये सुसंगठित सेना का होना अत्यंत आवश्यक है। अतः अकबर के द्वारा 1575 ई0 में 'मनसबदारी' व्यवस्था के आधार पर सैनिक संगठन किया गया।

मनसब शब्द का अर्थ 'श्रेणी' अथवा 'पद' है तथा 'मनसबदार' का अर्थ उस अधिकारी से था जिसे शाही सेना में एक पद अथवा श्रेणी प्राप्त थी। इस व्यवस्था में मनसबदार को जमीन के स्थान पर नकद वेतन दिया जाता था लेकिन कभी–2 कुछ मनसबदारों को जागीर भी दे दी जाती थी। अकबर के समय में कुल मनसब 33 थे। यह मनसब 10 से लेकर 12 हजार तक के प्रदान किये जाते थे। 500 से 2500 तक के मनसबदार 'अमीर' कहलाते थे तथा इससे ऊपर के मनसबदार 'अमीरे–आजम' कहा जाता था। अधीनस्थ राजा भी मनसबदारी व्यवस्था के अन्तर्गत आते थे। अकबर ने इन्हें भी मनसब प्रदान किये। 1593 ई0 में अकबर ने जात का प्रयोग किया, किन्तु 1594 ई0 में 'जात' पद के साथ 'सवार' का पद भी प्रदान किया जाने लगा। जात के अन्तर्गत मनसबदार को एक निश्चित संख्या में हाथी, घोड़े, भारवाहक पशु तथा वाहन रखने पड़ते थे जबकि सवार घुड़सवारों की वास्तविक संख्या प्रदान करता था। मनसबदार का पद बिना सवार के हो सकता था किन्तु बिना जात के नहीं। सवार की संख्या जात की संख्या से अधिक नहीं हो सकती थी। वह जात की संख्या के बराबर अथवा उससे कम हो सकती थी। जात की संख्या समान होने पर भी सवार की संख्या के आधार पर मनसबदारों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता था।

मनसबदारों की नियुक्ति प्रोन्नति या पदानवति बादशाह के द्वारा की जाती थी। मनसबदार का पद योग्यता के आधार पर दिया जाता था। अतः साधारण व्यक्ति भी उच्च पद तक पहुँच सकता था। मनसबदार का पद वंशानुगत नहीं होता था। साधारणतः मनसबदार की मृत्यु के बाद उसका पद छीन लिया जाता था। मनसबदारों को बारह महीने वेतन दिया जाता था। मनसबदारों को यह अनुमति थी कि वे सैनिक पर होने वाले व्यय के लिए उनके वेतन का पाँच प्रतिशत स्वयं रख ले। इस मनसबदारी व्यवस्था से अकबर को बहुत लाभ हुआ। इस व्यवस्था से योग्य सैनिकों की प्राप्ति हुई। उनकी बादशाह के प्रति निश्ठा बढ़ी। अकबर को कम खर्चे में एक निश्ठावान एवं शक्तिशाली सेना प्राप्त हो गयी। अकबर के पश्चात मनसबदारी व्यवस्था के यद्यपि मूल सिद्धांत तो विद्यमान रहे, किन्तु इस प्रथा में कुछ परिवर्तन अवश्य हुये। जहाँगीर के शासनकाल में मनसबदारों का एक नया पद स्थापित किया गया जिसे 'दो अस्पा सीह अस्पा' कहा गया। मनसबदारों के अधीन जो सवार होते थे उनमें से कुछ दो अस्पह (दो घोड़े वाले) तथा सीह अस्पा (तीन घोड़े वाले) होते थे। जिन्हें 20 रूपये, 25 रूपये मासिक वेतन मिलता था। अकबर, जहाँगीर तथा शाहजहाँ के समय में मनसबदारी व्यवस्था सुचारू रूप से चलती रही किन्तु औरंगजेब तथा उसके बाद के शासकों के समय में इसमें अत्यधिक दोष आ जाने के कारण यह प्रथा लगभग समाप्त हो गयी।

2.6 मुगलों की भू–राजस्व व्यवस्था

मुगल बादशाहों की आय के मुख्य साधन युद्ध में लूटी गयी सम्पत्ति का पाँचवा भाग, व्यापारिक कर, टकसाल, अधीनस्थ राजाओं एवं मनसबदारों से समय–समय पर प्राप्त होने वाले उपहार, लावारिस सम्पत्ति, नमक कर, राज्य के द्वारा चलाये जाने वाले उद्योगों से आय और लगान (भूमि–कर) था। बाबर और हुमायूँ ने हिन्दुओं से 'जजिया' और मुसलमानों से 'जकात' नामक धार्मिक कर लिये परन्तु अकबर ने अपने शासनकाल में इन्हें समाप्त कर दिया। औरंगजेब के समय में ये धार्मिक कर पुनः लगाये गये और उसके पश्चात सैय्यद भाईयों के समय को छोड़कर अधिकांश मुगल बादशाहों ने इन करों को लेने का प्रयत्न किया। आय के साधनों में लगान अथवा भूमि–कर सबसे प्रमुख था। मुगल–साम्राज्य के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था के रखरखाव का भार राजस्व–विभाग के जिम्मे था जिसका प्रधान दीवान होता था। वह मुस्तफी, दीवान–ए–खालसा, दीवान–ए–जागीर और दीवान–ए–बयूतात आदि अधिकारियों की सहायता से राजस्व सम्बन्धी कार्यों को सम्पादित करता था।

भारत सदैव से एक कृशि–प्रधान देश रहा है। राज्य की आय के प्रमुख साक्ष्य के रूप में कृशि का हमारे देश में विशेश महत्व है। प्रारम्भिक मुगल शासकों बाबर और हुमायूँ ने अपनी अस्थिर स्थिति के कारण भू–राजस्व के क्षेत्र में सल्तनतकालीन नीति को ही जारी रखा परन्तु शेरशाह ने अफगान सत्ता की स्थापना के बाद भू–राजस्व–व्यवस्था में कई महत्वपूर्ण सुधार किये जिसके कारण प्रशासन के क्षेत्र में उसे अकबर का अग्रगामी भी कहा जाता है।

वास्तव में, मुगल–काल में भू–राजस्व–व्यवस्था को संगठित रूप प्रदान करने का श्रेय अकबर को है। उसने 1560 से 1590 ई0 तक निरन्तर इस क्षेत्र में कार्य किया और एक के बाद एक कई लोगों को दीवान के पद पर नियुक्त किया, जिनमें ख्वाजा मजीद, मुजफ्फरखाँ और टोडरमल के नाम विशेश उल्लेखनीय हैं। **वी0 ए0 स्मिथ** ने लिखा है कि "अकबर के भूमि– प्रबन्ध के तरीकों को बाद में अंग्रेजों ने भी अपनाया था।" **मोरलैण्ड** का मत है कि "अकबर के समय का बन्दोबस्त ब्रिटिशकालीन बन्दोबस्त की तरह था।" उपर्युक्त यूरोपीय विद्धानों के वर्णन से यह स्पश्ट हो जाता है कि मुगलकालीन भूराजस्व–व्यवस्था अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। लगान का समुचित हिसाब रखने के लिए अकबर ने 'करोड़ी' नामक अधिकारी नियुक्त किये। उनकी सहायता के लिए 'कारकुन' और 'पोतदार' रखे गये। काफी सोच–विचार के बाद अकबर ने 'दहसाला' प्रबन्ध को लागू किया अर्थात् प्रारम्भिक दस वर्शों के मूल्य के औसत के आधार पर लगान निश्चित किया गया। अकबर ने भूमि की उर्वरता के अनुसार भूमि को चार भागों में बाँटा था–

(1) **पोलज भूमि**– यह सबसे श्रेश्ठ भूमि थी, जिस पर प्रत्येक वर्श खेती होती थी।

(2) **पड़ौती भूमि**– इस भूमि पर उत्पादन–शक्ति को पुनः संचित करने के लिये एक या दो वर्श के लिये खाली छोड़ दिया जाता था।

(3) **चाच्चर भूमि**– इस भूमि पर तीन या चार वर्शों तक खेती नहीं की जाती थी।

(4) **बंजर भूमि**– इस प्रकार की भूमि पर पाँच या अधिक वर्शों तक खेती नहीं की जाती थी।

प्रत्येक प्रकार की भूमि के प्रत्येक बीघे की गत दस वर्षों की उपज के औसत के अनुसार प्रत्येक परगने की अलग–अलग उपज निर्धारित कर दी गयी थी और समस्त पैदावार का 1/3 भाग भू–राजस्व के रूप में लिया जाता था।

अकबर के शासनकाल में मालगुजारी की वसूली के लिए तीन प्रकार की व्यवस्थाओं का प्रचलन था, जो निम्नवत् हैं–

(1) **गल्ला बख्शी**– इसके अनुसार फसल का कुछ भाग सरकार ले लेती थी।

(2) **नस्क**– इसके अनुसार भूस्वामी और सरकार के बीच भू–राजस्व के भुगतान के लिए अनुबन्ध हो जाता था।

(3) **जाप्ती**– इस प्रथा के अन्तर्गत खेत में खड़ी फसल पर लगान निश्चित कर दिया जाता था।

शेरशाह की भाँति अकबर ने भी भू–राजस्व की वसूली के लिए 'पट्टा' और 'कबूलियत' की प्रथाएँ लागू कीं। परन्तु शर्तों में बँधे होने के बाद भी यदि किसी प्राकृतिक विपत्ति के कारण फसल कम होती थी अथवा नहीं होती थी, तब बादशाह अकबर लगान माफ कर दिया

करता था। अकबर की उदार लगान–व्यवस्था और अन्य करों पर प्रतिबन्ध लगाने के बाद भी राज्य की आय में कोई कमी नहीं आयी और देश उत्तरोत्तर समृद्ध होता गया। अकबर की भूराजस्व–व्यवस्था अत्यन्त वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित थी इसलिए समस्त विद्वानों ने उसकी प्रशंसा की है, किन्तु कालान्तर में इसमें कई दोष आ गये थे। औरंगजेब के शासनकाल में करों की वसूली का कार्य ठेके पर दिये जाने से इस व्यवस्था में अनेक दोष उत्पन्न हो गये और वे भूराजस्व अधिकारियों के व्यक्तिगत स्वार्थों का शिकार बनने लगे।

बोध प्रश्न–3

1. मुगलों की भू–राजस्व व्यवस्था पर 10 पंक्तियाँ लिखिये।
2. निम्न में से सही कथन के सामने (√) तथा गलत कथन के सामने (X) का निशान लगाइये।

   (i) अर्थव्यवस्था के रखरखाव का भार दीवान के ऊपर होता था।

   (ii) साम्राज्य की आय का प्रमुख साधन भूमि–कर था।

   (iii) दहसाला व्यवस्था शेरशाह ने आरम्भ की थी।

   (iv) गल्लाबक्शी व्यवस्था के अन्तर्गत फसल का कुछ भाग सरकार ले लेती थी।

2.7 सारांश

बाबर एवं हुमायूँ के युद्धों में व्यस्त रहने के कारण मुगल प्रशासन की ओर अधिक ध्यान नहीं दे पाये। हुमायूँ का पुत्र अकबर 14 वर्ष की अल्पायु में ही सिंहासन पर बैठ गया था और उसने ही मुगल प्रशासनिक व्यवस्था को मजबूत आधार–प्रदान किया। अकबर की महानता का कारण उसकी अनेक विजय, उसकी राजनीतिक दूरदर्शिता और धार्मिक सहनशीलता ही न थी बल्कि उसके द्वारा श्रेश्ठ शासन–व्यवस्था का स्थापित किया जाना भी था। अकबर ने इस क्षेत्र में न केवल अपने से पहले के शासकों के अनुभवों से लाभ प्राप्त किया बल्कि उसने अनेक नवीनताओं को भी जन्म दिया। सैन्य क्षेत्र में अकबर की मनसबदारी प्रथा एक व्यवस्थित, दोशरहित और श्रेश्ठतम व्यवस्था थी। उसी प्रकार शेरशाह की लगान–व्यवस्था अकबर के लिये एक उदाहरण अवश्य थी परन्तु अकबर का 'दहसाला प्रबन्ध' शेरशाह की लगान व्यवस्था से श्रेश्ठ था। इसी प्रकार शासन के सभी क्षेत्रों में अकबर के प्रयत्न अत्यन्त सफल हुए थे। अकबर की सफलता से जहाँगीर, शाहजहाँ और औंरंगजेब ने भी लाभ उठाया। जहाँगीर ने अपने पिता से एक व्यवस्थित राज्य प्राप्त किया। वह उसमें सुधार तो न कर सका परन्तु उस व्यवस्था को किसी न किसी रूप में स्थापित अवश्य रख सका। शाहजहाँ और औरंगजेब के समय में मुगल–शासन व्यवस्था में दोश बढ़ने लगे परन्तु फिर भी इसके मूल सिद्धांत स्थापित रहे। औरंगजेब के पश्चात उत्तरकालीन कमजोर एवं अयोग्य मुगल बादशाहों के समय में यह व्यवस्था धीरे–धीरे नश्ट होती चली गयी परन्तु फिर

भी अपनी कुशल प्रशासनिक व्यवस्था के कारण मुगलों ने भारत में एक लम्बे समय तक शासन करने में सफलता प्राप्त की।

2.8 शब्दावली

प्रतिरूप	–	समान रूप वाला
स्वेच्छाचारिता	–	अपनी इच्छा से आचरण करने वाला
मुहतासिब	–	प्रजा के नैतिक चरित्र की देखभाल करने वाला
कानूनगो	–	राजस्व महकमें का वह अधिकारी जो पटवारियों के कागजात एवं काम–काज की जाँच करता था।
दहसाला व्यवस्था	–	राजस्व एकत्र करने की नयी व्यवस्था

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1. देखो भाग 2.3.1.
2. देखो भाग 2.3.3.
3. (i) (√) (ii) (√) (iii) (X) (iv) (X)

बोध प्रश्न–2

1. देखो भाग 2.4.
2. (i) (√) (ii) (√) (iii) (X) (iv) (X)

बोध प्रश्न–3

1. देखो भाग 2.6.
2. (i) (√) (ii) (√) (iii) (X) (iv) (√)

इकाई–3 (क)
मनसबदारी एवं जागीरदारी प्रथा

खण्ड (क) मनसबदारी प्रथा

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 मनसबदारी प्रथा

3.2.1 मनसब का अर्थ

3.2.2 मनसबदारी प्रथा की संरचना

3.2.3 विभिन्न शासकों के अधीन मनसबदारी प्रथा

3.3 विभिन्न शासकों के अधीन मनसबदारी प्रथा

3.4 मनसबदारी प्रथा के गुण

3.5 मनसबदारी प्रथा के दोष

3.6 सारांश

3.7 शब्दावली

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.9 सहायक ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

अकबर से पूर्व मुगल शासकों द्वारा सैनिक क्षेत्र में सुधार हेतु कोई कदम नहीं उठाये गये। अकबर से पहले सैनिकों को नकद वेतन के स्थान पर जागीरों देने की प्रथा थी। जिससे सेना जागीरदारों के प्रति निश्ठावान होती थी। अतः अकबर ने सेना को अपने नियंत्रण में लेने के लिये मनसबदारी व्यवस्था को जन्म दिया। जिसके अन्तर्गत सैनिकों एवं अन्य गैर सैनिक अधिकारियों को भूमि के स्थान पर नकद वेतन देने की प्रथा आरम्भ की गयी। इस इकाई के माध्यम से आप जानेंगे–

1. मनसब का अर्थ, मनसबदारी प्रथा की पृष्ठभूमि एवं संगठन
2. विभिन्न शासकों के अधीन मनसबदारी प्रथा
3. मनसबदारी प्रथा के गुण एवं दोश

3.1 प्रस्तावना

मुगल साम्राज्य की स्थापना सेना के बल पर हुई थी, अतः सेना को मुगल साम्राज्य का आधार स्तम्भ कहा जाता था। अकबर प्रथम मुगल बादशाह था। जिसने विशेश रूप से सेना के संगठन की ओर ध्यान दिया। उसने मनसबदारी प्रथा को जन्म दिया और उसके आधार पर सेना को मजबूत बनाया।

3.2 मनसबदारी प्रथा

3.2.1 मनसब का अर्थ

मनसब का शाब्दिक अर्थ होता है 'पद या प्रतिश्ठा'। अतः मनसबदार शाही सेना में पदवी धारण करने वाले अधिकारी को कहा जाता था। मनसब गैर सैनिक सरदारों या अधिकारियों को भी दिया जाता था।

3.2.2 मनसबदारी प्रथा की पृष्ठभूमि

मुगलों की सैनिक व्यवस्था की प्रमुख विशेशता मनसबदारी प्रथा थी। अकबर से पूर्व सबसे पहले इस व्यवस्था को खलीफा अब्बासईद द्वारा शुरू किया गया था। चंगेज खाँ एवं तैमूर ने भी आगे इस व्यवस्था को अपनाया। दिल्ली सल्तनत के शासकों ने भी किसी न किसी रूप में इसे अपनाया था। अकबर ने इस प्रथा को अपने शासनकाल के ग्यारहवें वर्ष में शुरू किया गया। मनसबदारी–प्रथा जिसका मुख्य आधार दशमलव प्रणाली के आधार पर अधिकारियों के पदों का विभाजन करना था। भारत के लिये नवीन न थी परन्तु अकबर ने अपने तरीके से इसे श्रेश्ठ अवश्य बनाया था।

3.2.3 मनसबदारो प्रथा की संरचना

अकबर ने अपने आरम्भिक काल में 10 से लेकर 10,000 और बाद में 12,000 तक की संख्या तक के मनसब दिये थे। सबसे बडा मनसब 10,000 का था तब 5,000 से ऊपर की संख्या के मनसब केवल शाहजादों और राजपरिवार के लोगों को दिये गये परन्तु जब सबसे बड़ा मनसब 12,000 की संख्या का हो गया तब सरदारों को 7,000 तक के मनसब प्रदान किये गये और ऊपर के शहजादों के लिये सुरक्षित रखे गये। अकबर ने अपने सम्पूर्ण मनसबों को 33 श्रेणियों में विभाजित किया था। 500 से नीचे का मनसबदार 'मनसबदार' ही कहलाते थे। 500 से 2500 से ऊपर के मनसबदारों को 'अमीर' पुकारा जाता था और 2500 से ऊपर के मनसबदारों को 'अमीरे आजम' कहा जाता था। निम्न मनसब पर नियुक्त व्यक्ति भी अपनी योग्यता या बादशाह की कृपा के बल पर धीरे–2 तरक्की करके ऊँचे मनसब प्राप्त कर सकते थे। मनसबदार का पद वंशानुगत नहीं होता था एवं मनसबदार की नियुक्ति,

पदोन्नति व पदानवति बादशाह की इच्छा पर निर्भर रहती थी। मनसबदारों को वेतन अधिकतर नगद रूप में दिया जाता था। कभी–2 किसी मनसबदार को जागीर भी प्रदान कर दी जाती थी लेकिन इसका मतलब यह नहीं था कि वह उस जागीर के संदर्भ में निरंकुश हो जाये बल्कि वह बादशाह के प्रत्यक्ष नियंत्रण में रहता था। इस व्यवस्था में जागीर प्राप्त अमीर को उसकी सेवा के बदले में जो जागीर दी जाती थी वह उसका वेतन होता था। उस जागीर से प्राप्त राशि में से अपना वेतन लेने के बाद शेश बची हुई राशि को मनसबदार को मुगल खजाने में जमा करना पड़ता था।

अकबर ने 1593 ई0 में 'जात' का पद शुरू किया और 1594 ई0 में 'सवार' के पद का भी सृजन किया। 'जात' का शब्द सैनिकों की संख्या का द्योतक और 'सवार' का पद घुड़सवारों की संख्या को निश्चित करता था। 'जात' और 'सवार' के पद को शुरू करने के साथ–2 अकबर ने 5,000 और उससे कम संख्या के मनसबदारों की श्रेणियों में से प्रत्येक श्रेणी को तीन श्रेणियाँ में बांटा गया। यदि एक मनसबदार को समान संख्या का 'सवार' और 'जात' का पद दिया जाता था। वह अपनी श्रेणी के मनसबदारों में प्रथम श्रेणी का मनसबदार होता था। जैसे– यदि एक मनसबदार को 5,000 जात और 5,000 सवार का पद प्राप्त होता था तो वह पंचहजारी मनसबदारों में प्रथम श्रेणी का मनसबदार होता था। यदि एक मनसबदार को 'सवार' का पद 'अपने 'जात' के पद से कम संख्या का, परन्तु आधे से कम का नहीं का प्राप्त होता था तो वह अपनी श्रेणी के मनसबदारों में द्वितीय श्रेणी का माना जाता था। यदि एक मनसबदार को 'सवार' का पद अपने 'जात' के पद की संख्या के आधे से कम का प्राप्त होता था तो वह अपनी श्रेणी के मनसबदारों में तृतीय श्रेणी का माना जाता था। इस प्रकार प्रत्येक मनसब की तीन श्रेणियाँ होती थीं। प्रत्येक मनसबदार की स्थिति उसकी जात व सवार की संख्या पर निर्भर करती थी।

मनसबदार से यह आशा की जाती थी कि अपने वेतन में से निर्धारित संख्या में रखे जाने वाले घोड़ों, हाथियों और भारवाही पशुओं पर होने वाला खर्च भी पूरा करेगा। बाद में उनका रख रखाव केन्द्रीय प्रशासन द्वारा किया जाने लगा, लेकिन उनका खर्च मनसबदार को अपने वेतन में से पूरा करना पड़ता था।

इन खर्चों को पूरा करने के लिये मनसबदारों को 12 महीने अच्छे वेतन दिये जाते थे। उदाहरण स्वरूप पाँच हजारी मनसबदार को 30,000 रूपये, तीन हजारी को 17,000 रूपये, हजारी को 8,200 रूपये दिये जाते थे। मोटे तौर पर उनके वेतन का एक चौथाई भाग परिवहन दल पर खर्च होता था। तब भी मुगल मनसबदार विश्व के सबसे अधिक वेतन पाले वाले सरकारी संवर्ग सेवा का सदस्य होता था। मनसबदार को प्रत्येक घोड़े के लिए दो रूपये का भुगतान भी होता था।

प्रत्येक मनसबदार एक अस्पा, दो अस्पा और सी–अस्पा अर्थात् एक घोड़ा, दो घोड़े और तीन घोड़े वाले सैनिक रखते थे जिन्हें क्रमशः 15 रूपये, 20 रूपये और 25 रूपये वेतन

मिलता था। अकबर ने अपने समय में सैनिकों का हुलिया लिखे जाने तथा घोड़े एवं हाथियों को दागने की प्रथा आरम्भ की थी। प्रत्येक घोड़े पर एक शाही निशान और मनसबदार का निशान दागा जाता था। प्रत्येक मनसबदार का निशान अलग–2 होता था ताकि वे एक–दूसरे से घोड़ों की अदला–बदली न कर सकें क्योंकि मुगल सेना में घोड़ों एवं हाथियों का विशेश स्थान था। मनसबदारों की देखरेख के लिए एक अलग विभाग का भी गठन किया गया लेकिन अकबर स्वयं भी मनसबदारों की सेना का निरीक्षण करता था। इस प्रकार अकबर ने इस प्रथा के द्वारा मुगल सेना को एक नये रूप में संगठित किया।

बोध प्रश्न–1

1. मनसबदारी प्रथा के संगठन पर 10 पंक्तियाँ लिखिये।
2. निम्न में से सही कथन के सामने (√) तथा गलत कथन के सामने (X) का निशान लगाइये।

   (i) मनसब का शाब्दिक अर्थ होता है पद या प्रतिश्ठा।

   (ii) अकबर ने अपने आरम्भिक काल में 10 से लेकर 8,000 तक के मनसब प्रदान किये।

   (iii) मनसबदारों की नियुक्ति, पदोन्नति व पदावनति बादशाह की इच्छा पर निर्भर रहती थी।

   (iv) मनसबदारों को वेतन अधिकतर जागीर के रूप में प्रदान किया जाता था।

3.3 विभिन्न शासकों के अधीन मनसबदारी प्रथा

मनसबदारी प्रथा के अन्तर्गत अकबर से लेकर औरंगजेब तक लगातार परिवर्तन होते रहे। अकबर के शासनकाल में इन मनसबदारों की संख्या करीब 1500 के आस–पास लेकिन धीरे–2 इनकी संख्या में इजाफा होता चला गया और औरंगजेब के समय में इनकी संख्या 14,500 के लगभग हो गयी थी। अकबर के शासन काल से लेकर सम्पूर्ण 17वीं शताब्दी तक मनसबदारी का मौलिक रूप बना रहा।

जहाँगीर ने अपने समय में 'दो–अस्पा–सिंह–अस्पा' नामक एक नवीन पद का सृजन किया। इस पद को दिये जाने वाले अधिकारी को अपने पास एक निश्चित संख्या में घुड़सवार रखने होते थे। शाहजहाँ ने मनसबदारों के नये वेतनमान निर्धारित किये। मनसबदारों को जागीर देने के लिये रजिस्ट्रर तैयार करवाये गये जिनमें जागीरों का विवरण रहता था। जागीरों की कीमत रूपये में नहीं बल्कि दाम में आँकी जाती थी। इसलिए इस व्यवस्था को 'जामादामी' भी कहते थे। औरंगजेब के शासनकाल में उच्च श्रेणी के मनसबदारों की संख्या अत्यधिक बढ़ गयी जिसके कारण उन्हें देने के लिये जागीरों का अभाव हो गया। अतः नये मनसबदारों की भर्ती पर रोक लगा दी गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि औरंगजेब की

मृत्यु के बाद मनसबदारी प्रथा समाप्त हो गयी।

3.4 मनसबदारी प्रथा के गुण

1. प्रत्येक मनसबदार अपने कार्यों और व्यवहार में बादशाह के प्रति समर्पित और विश्वसनीय बना रहता था, क्योंकि वह जानता था कि उसका अस्तित्व बादशाह की कृपा पर निर्भर करता था। मुगल शासकों ने मनसबदारों की इस भावना का पूरा लाभ उठाया और मनमाने ढंग से उनकी क्षमताओं का उपयोग किया।
2. मनसबदारों की सहायता से मुगलों को विशाल प्रशिक्षित सेना समय–समय पर प्राप्त हो जाया करती थी जिसकी सहायता से वे युद्धों में सफलाताएँ प्राप्त करते रहे।
3. सैनिक पद्धति में व्याप्त अनेक दोश मनसबदारी प्रथा के प्रचलन से स्वतः दूर हो गये।
4. मुगल सम्राट अकबर ने अपने शासन में राजपूतों को बड़े–बड़े मनसब प्रदान करके उनका पूर्ण समर्थन और सहयोग प्राप्त किया, जिससे मुगल–साम्राज्य की जड़ें उत्तरोत्तर सुदृढ़ हो गयीं।

3.5 मनसबदारी प्रथा के दोश

निस्सन्देह इस प्रथा के प्रचलन का प्रमुख उद्देश्य सैन्य–संगठन में व्याप्त दोशों को दूर करना था परन्तु इस व्यवस्था में भी कतिपय दोश अकबर के शासन में ही उत्पन्न होने लगे थे जो बाद में मुगल–साम्राज्य के पतन में सहायक सिद्ध हुऐ। ये दोश निम्नलिखित थेः–

1. मनसबदारों की सेना में देशभक्ति कम और मनसबदार के प्रति लगाव अधिक रहता था।
2. इस प्रथा के प्रचलन से सैनिक–व्यय में अत्यधिक वृद्धि हुई।
3. वेतन का दायित्व मनसबदारों का होने के कारण सेना में भ्रश्टाचार बढ़ गया था।
4. अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए मनसबदारों ने निश्चित संख्या से कम सैनिक और पशु रखकर राजकोश पर विपरीत प्रभाव डाला।
5. अप्रशिक्षित सैनिक युद्ध के अवसर पर समस्याएँ उत्पन्न करते थे।
6. मनसबदारों के परस्पर द्वेश सैन्य–संगठन में बाधक सिद्ध होते थे।
7. सैनिकों में राश्ट्रीयता की भावना का नितान्त अभाव हो गया था।

बोध प्रश्न–2

1. मनसबदारी प्रथा के गुण एवं दोशों पर 10 पंक्तियाँ लिखिये।

2. निम्न में से सही कथन के सामने (√) तथा गलत कथन के सामने (X) का निशान लगाइये।

(i) मनसबदारी प्रथा के अन्तर्गत लगातार परिवर्तन होते रहे।

(ii) प्रत्येक मनसबदार अपने कार्यों एवं व्यवहार में बादशाह के प्रति समर्पित रहता था।

(iii) मनसबदारों में राश्ट्रीयता की भावना अत्यधिक थी।

(iv) अकबर के समय में मनसबदारी प्रथा के कारण सेना में भ्रश्टाचार घट गया।

3.6 परिणाम

अनेक दोशों के होते हुए भी मनसबदारी प्रथा मुगल प्रशासनिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग थी। तत्कालीन लेखकों एवं यूरोप के विद्धानों ने इसके महत्व को स्पश्ट शब्दों में स्वीकार किया है। वास्तव में इस प्रथा के कारण ही 16वीं और 17वीं शताब्दी में मुगल–साम्राज्य को स्थायित्व प्राप्त हुआ था।

3.7 सारांश

अकबर द्वारा मनसबदारी प्रथा सेना को सुसंगठित एवं मजबूत करने के लिये चलायी गयी थी, जिसके अन्तर्गत सैनिकों को नगद वेतन देने की व्यवस्था प्रारम्भ की गयी थी। उच्च सैनिक एवं गैर सैनिक अधिकारियों को निम्न से उच्च श्रेणी के मनसब प्रदान किये जाते थे। उसके द्वारा स्थापित यह प्रथा पर्याप्त लाभदायक रही थी एवं उस समय मुगल सेना निसन्देह अजेय हो गयी थी। जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब ने भी अपने शासनकाल में मनसबदारी प्रथा को अपनाया जिससे इनके समय में भी मुगल सेना श्रेश्ठ बनी रही, परन्तु ये बादशाह समय के अनुसार उसकी कुशलता और शक्ति में वृद्धि नहीं कर पाये जिससे धीरे–धीरे इस प्रथा में दोश उत्पन्न होने लगे। फिर भी मनसबदारी प्रथा मुगलों के लिये बहुत लाभदायक सिद्ध हुई जिसके बल पर ही अकबर ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। उसके पश्चात जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब भी उसी सेना के कारण शासन करने में सफल रहे थे। परन्तु बाद के कमजोर शासकों के समय में इन मनसबदारों ने अपनी स्वतंत्र जागीरें स्थापित कर स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिये।

3.8 शब्दावली

मनसब	–	पद
वंशानुगत	–	वंश परम्परा से प्राप्त (पैतृक)
सवार	–	घुड़सवारों को कहा जाता था।

स्थानान्तरित – एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को दे देना

मौलिक – वास्तविक

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1. देखो भाग 3.2.3.
2. (i) (√) (ii) (X) (iii) (√) (iv) (X)

बोध प्रश्न–2

1. देखो भाग 3.4. से 3.6.
2. (i) (√) (ii) (X) (iii) (X) (iv) (√)

2.8 सहायक ग्रन्थ

इकाई–तृतीय (ख)
जागीरदारी प्रथा

खण्ड–ख

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 जागीरदारी प्रथा

3.2.1 जागीरदार का अर्थ

3.2.2 खालसा भूमि एवं जागीर भूमि में अन्तर

3.2.3 जागीर भूमि के प्रकार

3.3 जागीरदारी प्रथा का विकास

3.4 परिणाम

3.5 सारांश

3.6 शब्दावली

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.8 सहायक ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

सल्तनत काल में भारत में 'इक्ता व्यवस्था' इल्तुतमिश द्वारा आरंभ की गई जिसमें बड़े सैनिक अधिकारियों को नकद वेतन के बदले भूमि प्रदान कर दी जाती थी। उस भूमि पर समस्त अधिकार इन्हीं इक्तादारों को स्थानांतरित कर दिये जाते थे। कालांतर में इस प्रणाली में दोष सामने आने पर मुगल बादशाह अकबर ने एक नवीन व्यवस्था आरम्भ की जिसे 'जागीरदारी प्रणाली' के नाम से जाना जाता है। इस इकाई के माध्यम से आप जानेंगे–

1. जागीरदार का अर्थ, जागीर भूमि के प्रकार
2. जागीरदारी प्रथा का विकास एवं उसके परिणाम

3.1 प्रस्तावना

सल्तनत काल में आरंभ की गई इक्ता प्रणाली में आई कमियों को दूर करने के लिये अकबर ने जागीर के स्थान पर नकद वेतन देने की प्रणाली को पुनः आरंभ किया। इसके

लिये अकबर ने सैन्य संगठन में मनसबदारी व्यवस्था को आरंभ किया। इस प्रथा में सेना के उच्च अधिकारियों, अमीरों एवं प्रशासकीय अधिकारियों को वेतन के रुप में जागीरें प्रदान की जानी थीं।

3.2 जागीरदारी प्रथा का विकास

3.2.1 जागीरदार का अर्थ

जागीरदार शब्द फारसी भाषा के शब्द जागीर (भूमि) और दार (स्वामी) से मिलकर बना है जिसका साधारण अर्थ भूमि के स्वामी, मालिक या अधिकारी से होता था।

3.2.2 खालसा भूमि एवं जागीर भूमि में अन्तर

अकबर ने भूमि को दो भागों में विभाजित किया था। खालसा भूमि का राजस्व केन्द्रीय अधिकारी के द्वारा एकत्र किया जाता था और यह सीधे शाही कोष में जमा करवा दिया जाता था। जागीर भूमि में श्रेणी अथवा पद के आधार पर मनसबदारों को वेतन के बदले किसी भूक्षेत्र के राजस्व संग्रह का अधिकार दिया जाता था। राजस्व वसूली का कार्य अधिकांशतः मनसबदारों को ही दिया जाता था। मनसबदार सैनिक, प्रशासनिक अधिकारी या अमीर–कोई भी हो सकता था।

3.2.3 जागीर भूमि के प्रकार

जागीर भूमि कई प्रकार की होती थी–

(1) **तनख्वाह जागीर**– नकद वेतन के बदले प्रदान की जाने वाली जागीर 'तनख्वाह जागीर' कहलाती थी।

(2) **मशरुत जागीर**– किसी प्रशासनिक पद के साथ प्रदान की गई जागीर 'मशरुत जागीर' कहलाती थी।

(3) **इनाम जागीर**– मनसबदारों को किसी कार्य के प्रोत्साहन के लिये या पुरस्कार स्वरुप दी गई जागीर 'इनाम जागीर' कहलाती थी। जिसके माध्यम से उनके सम्मान में वृद्धि होती थी परन्तु इन जागीरों के प्रबंधन का कोई उत्तरदायित्व उन मनसबदारों पर नहीं होता था।

(4) **वतन जागीर**– इन जागीरों पर मनसबदारों का पैतृक अधिकार होता था। ये पहले से ही इस भूमि के स्वामी होते थे। इस भूमि से वसूला जाने वाला राजस्व यदि मनसबदार के वेतन से कम होता था तो उसकी पूर्ति के लिये उस मनसबदार को साधारणतः 'तनख्वाह जागीर' प्रदान की जाती थी।

बोध प्रश्न–1

1. जागीरदार का अर्थ एवं जागीर भूमि के प्रकार पर 10 पंक्तियाँ लिखिये।

2. निम्न में से सही कथन के सामने (√) तथा गलत कथन के सामने (X) का निशान लगाइये।

(i) जागीरदार उर्दू भाशा के शब्द से मिलकर बना है।

(ii) खालसा भूमि का राजस्व केन्द्रीय अधिकारी द्वारा एकत्रित किया जाता था।

(iii) नगद वेतन के बदले प्रदान की जाने वाली जागीर 'वतन जागीर' कहलाती थी।

(iv) पुरस्कार स्वरूप दी गयी जागीर 'मशरूत जागीर' कहलायी जाती थी।

3.3 जागीरदारी प्रथा का विकास

रैयतों के हितों की रक्षार्थ और जागीरदारों को नियंत्रण में रखने के लिये जागीरों के हस्तांतरण की व्यवस्था अनिवार्य थी। इसके लिये एक क्षेत्र में नियुक्त जागीरदारों को दूसरे क्षेत्रों में भी स्थानांतरित किया जाता था। वस्तुतः इससे शांति एवं स्थायित्व पैदा होता था। अकबर द्वारा आरंभ की गई यह प्रणाली 18$^{वीं}$ शताब्दी के पूर्वार्ध तक व्यापक रुप से जारी रही। परन्तु यह भी सच है कि बाद में केन्द्रीय शक्ति के निर्बल होने के कारण अधिकांश मामलों में पद और जागीरें वंशानुगत होने लगे थे।

जागीर के रुप में प्रदत्त भू–क्षेत्र पर राज्य और जागीरदार का द्वैध अधिकार होता था। जागीर की अनुमानित आय का अनुमान तो राजस्व विभाग रखता था परन्तु करों की वसूली का कार्य जागीरदार या उसके प्रतिनिधि ही करते थे। भूराजस्व निर्धारण में जागीरदार को केन्द्रीय राजस्व विभाग द्वारा स्वीकृत दरों को ही स्वीकार करना पड़ता है। भूराजस्व के अतिरिक्त अन्य मामलों से सम्बद्ध केन्द्रीय आदेश भी जागीरदार को स्वीकार करने पड़ते थे। शाही आदेशों का पालन करवाना फौजदार का कर्तव्य होता था। प्रांत का दीवान यह सुनिश्चित करता था कि कहीं जागीरदार अधिक राजस्व एकत्र करने के लिये किसानों का शोषण तो नहीं कर रहा है।

कुछ जागीरदार अपने सैनिकों को अपनी जागीरों के कुछ भू–भाग का राजस्व आवंटित कर देते थे जो उन सैनिकों के वेतन के अनुरूप होता था। बड़े जागीरदार अपनी भूमि को 'इजारा' (भू–राजस्व वसूली का ठेका) पर दे दिया करते थे। 'इजारा' किसानों के लिये अभिशाप के समान था क्योंकि इजारेदार अधिक से अधिक लाभ कमाने के लिये किसानों के शोषण से पीछे नहीं रहते थे। फिर भी जागीरदारों के लिये यह व्यवस्था अधिक सुविधाजनक थी क्योंकि व्यवहार में वे भूराजस्व की उगाही से मुक्त हो जाया करते थे।

औरंगजेब के शासन के पूर्वार्ध तक जागीरदारी प्रथा सुचारु रुप से चलती रही परन्तु उसके शासन के उत्तरार्द्ध में इस पर संकट के काले बादल आच्छादित हो गये और यह प्रथा संकटग्रस्त होने लगी। साम्राज्य में जागीर के रुप में विशेषांकित भूमि कम हो गई, जिसके कारण जागीरों का वितरण कर पाना कठिन हो गया। इसका प्रमुख कारण अमीरों

की संख्या में वृद्धि तथा मनसबों की संख्या में कमी होना था। औरंगजेब ने इस समस्या को हल करने का भरसक प्रयास किया था परन्तु वह असफल रहा। उसकी मृत्यु के उपरांत जागीरदारी प्रथा के समक्ष अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गईं थीं। अब जागीरदार स्वतंत्र होकर व्यवहार करने लगे परन्तु शीघ्र ही मुगल साम्राज्य के अंत के साथ ही यह प्रणाली भी समाप्त हो गई।

बोध प्रश्न–2

1. जागीरदार प्रथा के विकास पर 10 पंक्तियाँ लिखिये।
2. निम्न में से सही कथन के सामने (√) तथा गलत कथन के सामने (X) का निशान लगाइये।
   (i) जागीरदारों को एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्रों में स्थानान्तरित किया जाता था।
   (ii) जागीर के रूप में प्रदत्त भू–क्षेत्र पर राज्य और जागीरदार का द्वैद्य अधिकार होता था।
   (iii) जागीर की आय का लेखा–जोखा मनसबदार को देना पड़ता था।
   (iv) औरंगजेब के समय में जागीरदारी प्रथा में अनेक दोश उत्पन्न हो गये।

3.4 परिणाम

जागीरदारी प्रथा सल्तनत काल की इक्ता व्यवस्था की भांति थी परन्तु इसमें मुख्यतः एक अंतर था। इक्ता में इक्तादार ही राजस्व का मालिक होता था लेकिन जागीरदारी प्रथा में जिस भूभाग को वेतन के बदले दिया जाता था उससे प्राप्त राजस्व में से उस वेतन को घटाने के बाद जो शेष बचता था, वह राशि राजकोष में जमा करनी पड़ती थी। जागीर की आय का लेखा–जोखा राजस्व मंत्रालय ही रखता था। कमजोर केंद्र के समय में जागीरदारों ने अपने अपको मजबूत करने के पश्चात् वेतन के बदले प्रदान जागीर भूमि पर अपना अधिकार स्थापित करना शुरू कर दिया था और वे इस भूमि के स्थायी स्वामी बन गये थे। जिसने किसी न किसी रूप में मुगल साम्राज्य के पतन में अहम भूमिका निभायी थी।

3.5 सारांश

जागीरदारी प्रथा की शुरुआत अकबर ने जिस उद्देश्य से प्रारम्भ की थी, अपने उस उद्देश्य की पूर्ति में वह सफल रहा था। उसके समय में यह प्रथा सुचारु रुप से चलती रही। उसके काल में राजस्व वसूली के कार्य में कोई विशेष समस्या के प्रमाण नहीं मिलते। अकबर के बाद जहाँगीर और शाहजहाँ के काल में भी यह प्रथा कमोबेश ठीक प्रकार से चलती रही परन्तु औरंगजेब के समय में जागीरों की संख्या कम रह गई जबकि उनके दावेदारों की संख्या में वृद्धि होती चली गई थी। इस समस्या को सुधारने के लिये आरक्षित खालसा भूमि

में से भी जागीरों का आवंटन किया जाने लगा परन्तु इसके पश्चात भी इस समस्या का समाधान नहीं हो पाया। जिसकी वजह से औरंगजेब को जागीरदारों को भूमि के आवंटन में दिक्कत का सामना करना पड़ा और कमजोर बादशाहों के समय में जागीरदार स्वयं अपनी जागीरों के स्वतंत्र शासकों के समान व्यवहार करने लगे थे। कालान्तर में यह नियंत्रण वंशानुगत हो गया। अतः जागीरदारों के स्वतंत्र हो जाने पर वह मुगल साम्राज्य को चुनौती देने लगे जो मुगल साम्राज्य के पतन का एक प्रमुख कारण बना।

3.6 शब्दावली

राजस्व	–	लगान
हस्तान्तरण	–	एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजना
प्रदत्त	–	दिया जाना
द्वैध	–	दोहरा

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1. देखें भाग 3.2.1 से 3.2.3.
2. (i) (X) (ii) (√) (iii) (X) (iv) (X)

बोध प्रश्न–2

1. देखें भाग 3.3.
2. (i) (√) (ii) (√) (iii) (X) (iv) (√)

3.8 सहायक ग्रन्थ

इकाई–4

मराठों का शासन–प्रबन्ध

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 केन्द्रीय प्रशासन

4.2.1 राजा की स्थिति

4.2.2 अश्ट प्रधान

4.2.3 अन्य अधिकारी

4.3 प्रान्तीय एवं स्थानीय प्रशासन

4.3.1 प्रान्तीय प्रशासन

4.3.2 स्थानीय प्रशासन

4.5 न्याय व्यवस्था

4.5 सैन्य संगठन

4.5.1 सेना का विभिन्न भागों में विभाजन

4.5.2 दुर्गो की सुरक्षा एवं सैनिकों के अनुशासन पर बल

4.6 राजस्व व्यवस्था

4.7 सारांश

4.8 शब्दावली

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.10 सहायक ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

17वीं तथा 18वीं शताब्दियों में मराठों ने भारतीय राजनीति, विशेशतया दक्षिण की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जिस प्रकार, सल्तनत काल में विजयनगर एक प्रभावशाली राज्य के रूप में उभरा था, उसी प्रकार मुगल काल में शिवाजी के नेतृत्व में मराठे एक प्रमुख शक्ति के रूप में उभरकर सामने आये। शिवाजी ने मराठों के नवनिर्मित साम्राज्य के लिये एक सुदृढ़ प्रशासन व्यवस्था की स्थापना की। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात्

आप जानेंगे–

1. केन्द्रीय प्रशासन
2. प्रान्तीय एवं स्थानीय प्रशासन
3. सैन्य संगठन
4. न्याय व्यवस्था
5. राजस्व व्यवस्था

4.1 प्रस्तावना

मध्यकालीन दक्षिण भारत के राजनीतिक इतिहास में जितने भी शासक हुये हैं उनमें शिवाजी का नाम अग्रणी है। एक राज्य–संस्थापक एवं प्रशासक के रूप में उनकी तुलना किसी भी महान शासक से की जा सकती है। शिवाजी अशिक्षित थे किन्तु उन्होंने अपने राज्य के लिये एक कुशल प्रशासकीय योजना तैयार की जो उनके प्रशासनिक गुणों का परिचय देती है। शिवाजी का आदर्श हिन्दू राजशाही की स्थापना करना था। इसलिये, उन्होंने प्राचीन भारत में प्रचलित प्रशासनिक व्यवस्था के अनेक तत्वों को अपनी प्रशासनिक व्यवस्था में अपना लिया परन्तु यह पूर्णतः हिन्दू शासन प्रणाली पर ही आधारित नहीं था। शिवाजी के प्रशासन पर तत्कालीन दक्षिण रियासतों एवं मुगल साम्राज्य का भी प्रभाव देखा जा सकता है। उन्होंने राजतंत्रात्मक व्यवस्था की स्थापना की, परन्तु उनका प्रशासन धार्मिक कट्टरता पर आधारित नहीं था। जनकल्याण की भावना एवं धार्मिक सहिश्णुता को उन्होंने अपने शासन का मुख्य आधार बनाया।

4.2 केन्द्रीय प्रशासन

4.2.1 राजा की स्थिति

राजतंत्रात्मक व्यवस्था के अनुरूप मराठा राजा (शिवाजी) शासन का प्रधान होता था। राज्य की सारी शक्तियाँ उसी के हाथों में केंद्रित रहती थीं। सिद्धांततः वह स्वेच्छाचारी और निरंकुश शासक होता था जिस पर किसी भी प्रकार का वैधानिक नियंत्रण नहीं था। राजपद वंशानुगत था। प्रजा को प्रशासन में दखल देने का अधिकार नहीं था। इस प्रकार शिवाजी का प्रशासन भी दक्षिणी रियासतों एवं मुगलों की तरह स्वेच्छाचारी था; परन्तु व्यावहारिक स्थिति भिन्न थी। सर्वशक्तिमान होते हुए भी शिवाजी एक निरंकुश शासक की तरह नहीं बल्कि प्रजावत्सल शासक के समान शासन करते थे। वे राज्य की हिन्दू–मुस्लिम प्रजा को एक नजर से देखते एवं उनमें भेदभाव नहीं करते। मुसलमानों को भी मराठा राज्य में प्रशासनिक सेवाओं में स्थान दिया गया। शिवाजी प्रशासन में स्वयं व्यक्तिगत दिलचस्पी लेते थे एवं अधिकारियों पर कड़ा अनुशासन बनाए रखते थे। जिससे प्रशासनिक अत्याचार ना बढ़े

और राज्य में शांति व्यवस्था बनी रहे।

4.2.2 अश्टप्रधान

प्रशासन में सहायता करने के लिए शिवाजी ने आठ मंत्रियों की नियुक्ति की जो 'अश्टप्रधान' के नाम से जाने जाते हैं। इनका कार्य विभिन्न विभागों की देखभाल करना था एवं आवश्यकतानुसार राजा को परामर्श देना था। इन मंत्रियों की स्थिति मंत्रिपरिशद से भिन्न थी। ये सामूहिक तौर पर कार्य नहीं करते थे, बल्कि स्वतंत्र रूप से अपने–अपने विभाग का कार्य देखते थे। इनकी नियुक्ति एवं कार्यविधि शिवाजी की इच्छा पर ही निर्भर थी। शिवाजी इनकी सलाह मानने को बाध्य नहीं थे। इन अश्ट प्रधानों के नाम व कार्य इस प्रकार से हैं–

1. **पेशवा** का प्रमुख स्थान था जिसे पन्त प्रधान भी कहा जाता था। प्रशासनिक व्यवस्था में राजा के पश्चात् उसी का स्थान था। राज्य के प्रशासन की उचित व्यवस्था की जिम्मेदारी उसी की थी। वह अन्य सभी मंत्रियों एवं पदाधिकारियों के कार्यो का निरीक्षण भी करता था। राजा की अनुपस्थिति में उसका प्रशासनिक उत्तरदायित्व और अधिक बढ़ जाता था। उसके पद के महत्व का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि सभी सरकारी दस्तावेजों पर राजा के साथ उसकी भी मुहर लगाई जाती थी। शिवाजी के बाद पेशवा के अधिकारों में लगातार वृद्धि होती गई और अंततः पेशवा ही शासन के प्रधान बन गये।

2. **अमात्य अथवा मजुमदार** राज्य की आय–व्यय का हिसाब रखता था। वह अर्थव्यवस्था से संबद्ध सभी अधिकारियों के कार्यो का निरीक्षण भी करता था। मंत्री अथवा वाकया–नवीस राजा की सुरक्षा एवं व्यक्तिगत कार्यो की जिम्मेदारी के अतिरिक्त गुप्तचर तथा सूचना विभाग के कार्य भी देखता था।

3. **मंत्री** को **बाकिया नवीस** भी कहा जाता था। यह शिवाजी के गृह प्रबन्ध के लिए उत्तरदायी था तथा दरबार की महत्वपूर्ण घटनाओं का विवरण भी यह रखता था।

4. **सचिव अथवा सुरूनवीस** राजकीय पत्र–व्यवहार का कार्य संभालता था। वह सभी सरकारी पत्रों को पूरी जाँच–पड़ताल और अपनी मुहर लगाने के बाद ही भेजता था।

5. **सुमंत अथवा दबीर** की स्थिति विदेश मंत्री के समान थी। दूसरे राज्यों से कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित करने का कार्य उसी का था। संधि एवं युद्ध के मामलों में वह राजा को सलाह भी दिया करता था।

6. **सेनापति अथवा सारी–ए–नौबत** शिवाजी के अधीन सैन्य व्यवस्था का प्रधान होता था। सेनापति का पद भी राज्य के किसी प्रमुख मराठा सरदार को ही दिया जाता था। सैन्य व्यवस्था का संगठन उसी की जिम्मेदारी थी। सैनिकों की भर्ती, उन्हें अस्त्र–शस्त्र और घोड़े उपलब्ध कराना, सैनिकों के प्रशिक्षण, उन पर अनुशासन,

आवश्यकतानुसार राज्य के विभिन्न भागों में सेना की नियुक्ति, युद्ध के अवसर पर मोर्चाबंदी करना, युद्ध प्राप्त धन का हिसाब–किताब रखना सभी कार्य उसी के नियंत्रण में थे।

7. **पंडित राव** नामक मंत्री दान विभाग का प्रमुख होने के साथ–साथ राजपुरोहित भी होता था। वह जनता में अनुशासन और नैतिक चरित्र बनाए रखने का प्रयास करता था। राज्य की ओर से ब्राह्मणों, विद्वानों, गरीबों एवं असहायों को दी जाने वाली आर्थिक सहायता पर उसका नियंत्रण रहता था।

8. **न्यायाधीश** न्याय–विभाग का प्रधान होता था। उसे सैनिक और नागरिक सभी प्रकार के विवादों को निपटाना पड़ता था तथा निचली अदालतों के निर्णयों के विरूद्ध वह अपील भी सुनता था। समूचे राज्य में न्याय की उचित व्यवस्था करने का कार्य भी उसी के अधीन था।

न्यायाधीश एवं पण्डित राव को छोड़कर शेश सभी मंत्रियों को आवश्यकता पड़ने पर सैनिक जिम्मेदारियों को भी निभाना पड़ता था। पेशवा, सचिव एवं मंत्री को आवश्यकता पड़ने पर प्रांतों के प्रशासन की जिम्मेदारी भी सौंपी जाती थीं। अधिकांश मंत्री ब्राह्मण जाति से बनाए जाते थे। इन मंत्रियों के अतिरिक्त चिटनिस तथा मुंशी भी शिवाजी को प्रशासन में सहायता देते थे।

4.2.3 अन्य अधिकारी

अश्टप्रधानों की सहायता के लिए भी अनेक पदाधिकारी नियुक्त किए गए थे। इनमें दीवान, मजमुदार और फड़नवीस अर्थविभाग का कार्य देखते थे। सवनिस के जिम्मे राजकीय दस्तावेजों को रखने का काम था। कारखनिस प्रत्येक विभाग तथा सेना की आवश्यकताओं का ध्यान रखता था। चिटनिस राजकीय आज्ञा पत्रों, जमादार खजाने का और पोतनिस प्रतिदिन के खर्च के लिए धन की व्यवस्था करने का काम देखता था। इन प्रमुख अधिकारियों के अतिरिक्त छोटे स्तर के अनेक कर्मचारी जैसे, लेखक, निरीक्षक इत्यादि नियुक्त किए गए थे। राज्य अपने कर्मचारियों की सुख–सुविधा की पूरी व्यवस्था करता था। इन्हें वेतन नकद दिया जाता था। इनके कार्यों पर कड़ा नियंत्रण रखा जाता था।

बोध प्रश्न–1:

1. अश्ट प्रधान के विशय में दस पंक्तियों लिखिये।
2. निम्नलिखित कथनों में सही (√) या गलत (×) का चिन्ह लगाकर बताइये।

   i अश्ट प्रधान में प्रमुख स्थान सेनापति का था।

   ii सचिव राजकीय पत्र–व्यवहार का कार्य संभालता था।

iii अमात्य राज्य की आय–व्यय का हिसाब रखता था।

iv न्यायधीश एवं पंडित राव को भी आवश्यकता पड़ने पर सैनिक जिम्मेदारियाँ निभानी पड़ती थीं।

4.3 प्रान्तीय एवं स्थानीय प्रशासन

4.3.1 प्रान्तीय प्रशासन

केंद्रीय संगठन के अतिरिक्त प्रशासनिक सुविधा के लिए शिवाजी ने प्रांतीय एवं स्थानीय व्यवस्था पर भी ध्यान दिया। संपूर्ण मराठा राज्य को विभिन्न प्रांतों में विभक्त किया गया। इन प्रांतों की दो श्रेणियाँ थीं– स्वराज्य और मुगलई। जो प्रान्त शिवाजी के प्रत्यक्ष नियंत्रण में रहते थे उन्हें **'स्वराज्य'** कहा जाता था जो शिवाजी के प्रत्यक्ष नियंत्रण में थे। ऐसे प्रांतों को तीन भागों में बाँटा गया था– उत्तरी प्रांत, दक्षिणी प्रांत और दक्षिणी–पूर्वी प्रांत।

1. **उत्तरी प्रांत** में सूरत से लेकर पूना तक का इलाका था। इसके प्रशासक त्रिम्बक पिंगले थे।
2. **दक्षिणी प्रांत** में समुद्रतटीय इलाके तथा कोंकण प्रदेश शामिल था। इसकी देखभाल अन्नाजी दत्तों के जिम्मे थी।
3. **दक्षिण–पूर्वी प्रांत** इसमें सतारा, कोल्हापुर, बेलगाँव और धारवार के जिले शामिल थे एवं इसकी व्यवस्था का भार दत्तोजी पंत को सौंपा गया।

मुगलई– इस प्रांत में मैसूर का उत्तरी, मध्यवर्ती और पूर्वी भाग, मद्रास का वेलानी जिला, चितूर और आर्काट के क्षेत्र रखे गए।

प्रान्तपतियों की नियुक्ति शिवाजी द्वारा होती थी, प्रत्येक प्रान्त में सेना रहती थी जिसका सेनापति ही प्रान्तपति होता था। प्रान्तों की रक्षा करना, वहां शान्ति स्थापित करना, लगान व अन्य कर वसूल करना आदि उसके मुख्य कर्त्तव्य थे। प्रशासन की सुविधा की दृश्टि को प्रान्तों को परगनों में विभक्त किया गया।

4.3.2 स्थानीय प्रशासन

प्रांतों से छोटी प्रशासनिक इकाई परगना थी। परगने का अधिकारी आधुनिक जिलाधीश के समान होता था। प्रत्येक 'तरफ' (तर्फ) में विभक्त था तथा प्रत्येक तरफ में कुछ गांव होते थे। गांव प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी। गाँवों की व्यवस्था पटेल और ग्राम–पंचायतें देखती थीं। पाटिल व कुलकर्णी भी इनकी सहायता करते थे और गांवों को प्रशासनिक स्वायत्तता प्रदान की गई थी।

इस प्रकार शिवाजी का शासन–प्रबन्ध अत्यन्त व्यवस्थित था। शिवाजी के शासन–प्रबन्ध के विशय में में ग्राण्ट डफ ने लिखा है, ''उसकी शासन–व्यवस्था जनता के

लिए हितकर तथा सुखदायक थी।

4.4 न्याय व्यवस्था

शिवाजी ने निश्पक्ष न्याय के संपादन पर भी बल दिया। मराठा न्याय व्यवस्था प्राचीन भारतीय न्यायिक परंपराओं पर आधारित थी। राजा न्याय–व्यवस्था का सर्वोच्च अधिकारी होता था। न्यायाधीश के कार्यों पर वह स्वयं निगरानी रखता था। न्यायाधीश के पद पर केवल ब्राह्मण नियुक्त किये जाते हैं, जिन्हें धर्मशास्त्र का ज्ञान होता था। ये न्यायधीश दीवानी तथा फौजदारी दोनों ही प्रकार के मुकदमें सुना करते थे परन्तु कभी–कभी फौजदारी के मुकदमों का निर्णय 'पटेल' भी किया करते थे। अन्तिम अपील खुद शिवाजी के पास हो सकती थी जिसका निर्णय अंतिम व सर्वमान्य होता था। गांव वालों के झगड़ों का फैसला ग्राम–पंचायते किया करती थीं। न्याय की दृश्टि में सभी समान थे, किसी के प्रति भी भेदभाव की भावना नहीं बरती जाती थी। अपराधियों को कठोर दंड दिए जाते थे। इसलिए, राज्य में अपराध एवं अपराधियों की संख्या कम थी एवं सर्वत्र शांति व्यवस्था का वातावरण था।

4.5 सैन्य संगठन

4.5.1 सेना का विभिन्न भागों में विभाजन

मराठा राज्य की स्थापना सैनिक शक्ति के बल पर हुई थी। अतः, इसकी सुरक्षा के लिए शिवाजी ने सैन्य प्रबन्ध पर विशेश ध्यान दिया। वे सैनिकों की नियुक्ति, उनके प्रशिक्षण एवं अनुशासन पर व्यक्तिगत ध्यान देते थे। उनके पास एक विशाल और स्थायी सेना थी। शिवाजी की सेना विभिन्न टुकड़ियों में बँटी हुई थी। शिवाजी की नियमित और व्यक्तिगत सेना की टुकड़ी पागा अथवा बरगीर के नाम से जानी जाती थी। इस टुकड़ी में करीब 45,000 सर्वश्रेश्ठ घुड़सवार थे। यह सेना सेनापति के अधीन थी। सेना को विभिन्न टुकड़ियों में विभक्त कर उन्हें क्रमशः पंचहजारी, एकहजारी, जुमलादार और हवलदार के सुपुर्द कर दिया गया था। पागा सैनिकों को युद्ध के सामान और वेतन राज्य की ओर से दिए जाते थे। घुड़सवार सेना की दूसरी टुकड़ी सिलहदार कहलाती थी। ये अस्थायी थे। आवश्यकतानुसार, इनकी नियुक्ति की जाती थी। इन सैनिकों को अपने साजो–सामान की व्यवस्था स्वयं करनी पड़ती थी। इस सेना का संगठन भी बहुत कुछ पागा जैसा ही था; परन्तु इन्हें राज्य से नियमित वेतन नहीं मिलता था। शिवाजी की सेना में पैदल सेना की भी एक बड़ी टुकड़ी थी। पैदल सैनिक पाइक के नाम से जाने जाते थे। इन्हें भी विभिन्न टुकड़ियों में बाँटकर सैनिक अधिकारियों के सुपुर्द कर दिया गया था। सेनापति के नीचे क्रमशः सातहजारी, एकहजारी, जुमलादार, हवलदार और नायक इस सेना के कार्य देखते थे। शिवाजी की सेना में ऊँट और हाथी की टुकड़ियाँ तथा एक तोपखाना भी था। शिवाजी ने एक जल बेड़े का भी गठन किया, परन्तु तोपखाना और नौसेना बहुत अधिक विकसित और सुसंगठित नहीं थी। सैनिक कार्यों में सहायता के लिए गुप्तचर विभाग का भी गठन किया गया जो युद्ध के मौके पर महत्वपूर्ण

जानकारियाँ उपलब्ध कराते थे।

4.5.2 दुर्गो की सुरक्षा एवं सैनिकों के अनुशासन पर बल

शिवाजी ने दुर्गो की देखरेख और सैनिक अनुशासन पर भी ध्यान दिया। दुर्गो की सुरक्षा के लिए विशेश व्यवस्था की गई, क्योंकि ये दुर्ग ही मराठा शक्ति के वास्तविक आधार थे। इनमें सेना, साज–सामान और खजाना सुरक्षित रहता था। इसलिए, इन दुर्गो की सुरक्षा का भार मावल प्यादों और तोपचियों के सुपुर्द किया गया। किले की सुरक्षा की जिम्मेदारी हवलदार को सौंपी गई। शिवाजी सेना में कड़ा अनुशासन बनाए रखते थे। इतिहासकार खफी खाँ के अनुसार, ''सैनिकों को किसी धार्मिक स्थल, धर्मग्रंथ अथवा स्त्री को क्षति पहुँचाने अथवा तंग करने का अधिकार नहीं था। वे फसल नश्ट नहीं कर सकते थे एवं निरपराध लोगों को परेशान नहीं कर सकते थे। युद्ध के मोर्चे पर वे अपने साथ सिर्फ आवश्यक सामान ही ले जा सकते थे। शिवाजी ने अपनी सेना में मुसलमानों को भी नियुक्त किया एवं उनके साथ भेदभाव नहीं बरता।'' कठोर अनुशासन ने मराठा सेना को अत्यधिक शक्तिशाली बना दिया जिसके आधार पर शिवाजी लंबे समय तक मुगलों और दक्षिणी रियासतों से संघर्श करते रहे।

बोध प्रश्न–2

1. मराठों के सैन्य प्रबन्ध पर दस पंक्तियाँ लिखिये।
2. निम्नलिखित कथनों में सही (√) या गलत (×) का चिन्ह लगाकर बताइये।
   - i घुड़सवार सेना की टुकड़ी सिलहदार कहलाती थी।
   - ii शिवाजी की सेना में पैदल सेना अत्यन्त कम थी।
   - iii किलों की जिम्मेदारी हवलदार को सौंपी जाती थीं।
   - iv शिवाजी ने अपनी सेना में मुसलमानों को भी नियुक्त किया था।

4.6 राजस्व व्यवस्था

सेना की ही तरह शिवाजी ने राजस्व व्यवस्था के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कार्य किए। उनके समय में राजा को मुख्यतः लगान, चुंगी, बिक्री कर, भेंट उपहार, आयात–निर्यात, पार–पत्र तथा चौथ एवं सरदेशमुखी करों से आमदनी होती थी। युद्ध के लूट से भी धन मिलता था। चौथ विजित राज्यों से उनकी सुरक्षा के बदले में लिया जाता था जो उनकी वार्शिक आदमनी का 1/4 भाग होता था। सरदेशमुखी प्रदेश की जनता से लिया जाता था जो उनकी आय का 1/10वाँ भाग होता था।

शिवाजी ने भूमि–व्यवस्था में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन किया। अपने सुधारों के लिए उन्होंने मलिक अम्बर की लगान की व्यवस्था को आधार बनाया। 1679 ई0 में अन्नाजी दत्तों

द्वारा पूरी जमीन का सर्वेक्षण करवाया गया और उसके आधार पर लगान की राशि तय की गई। भूमि को उपज के आधार पर तीन भागों में विभक्त किया गया। पट्टीभूमि, उद्यान और पहाड़ी भूमि। पहले से उपज का 2/5वाँ भाग, दूसरे से 1/2वाँ भाग और तीसरे से नाम–मात्र का लगान वसूला गया क्योंकि इसमें उपज बहुत कम होती थी।

शिवाजी ने किसानों को राहत पहुँचाने के लिए भी अनेक कार्य किए। लगान की वसूली के लिए किसानों से सीधा संपर्क स्थापित करने का प्रयास किया। जागीरदारी और जमींदारी प्रथा के स्थान पर रैयतवाड़ी–व्यवस्था को प्रोत्साहन दिया गया। यद्यपि शिवाजी जमींदारी–प्रथा (देशमुखी) को समाप्त नहीं कर सके और न हीं उन्होंने जागीरें (मोकासा) देना पूर्णतः बंद किया, तथापि उन्होंने देशमुखी और मिरासदारों (जमीन पर वंशानुगत अधिकार रखने वालों) पर नियंत्रण स्थापित कर उनके प्रभाव को अवश्य कमजोर कर दिया। लगान वसूली के लिए राजकीय अधिकारी नियुक्त कर दिये गये। लगान की राशि भी निश्चित कर दी गई। कृशि को प्रोत्साहन देने के लिए किसानों को आवश्यकतानुसार ऋण एवं अन्य आवश्यक सामग्री दी गई। इन सबके चलते राज्य की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हुई। राजकीय आय का एक बड़ा भाग प्रशासन, सेना एवं जनहित के कार्यों पर खर्च होता था।

बोध प्रश्न–3

1. मराठों की राजस्व व्यवस्था पर दस पंक्तियाँ लिखिये।
2. निम्नलिखित कथनों में सही (√) या गलत (×) का चिन्ह लगाकर बताइये।
   - i टकसालों से राज्य को कोई आमदनी नहीं होती थी।
   - ii चौथ एक प्रकार का कर था।
   - iii भूमि–व्यवस्था में सुधार के लिए मलिक अम्बर की लगान व्यवस्था को आधार बनाया गया।
   - iv कृशि को प्रोत्साहन देने के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया।

4.7 सारांश

शिवाजी एक महान शासन प्रबन्धक थे। असैनिक और सैनिक दोनों प्रकार की शासन व्यवस्था में उन्होंने अद्‌भुत योग्यता का परिचय दिया। शिवाजी ने शासन में नवीन अन्वेशण किये हैं, यह तो स्वीकार नहीं किया जा सकता, परन्तु उन्होंने दूसरों के ज्ञान से लाभ उठाकर अपनी इच्छानुसार परिवर्तन किये। उन्होंने शेरशाह और अकबर जैसे महान शासन प्रबन्धकों से भी बहुत कुछ सीखा। शिवाजी की अश्टप्रधान व्यवस्था, उनकी लगान व्यवस्था, किसानों से सीधा सम्पर्क स्थापित करना, शासन में असैनिक अधिकारियों को महत्व देना तथा ऐसे शासन की स्थापना करना जो उनकी अनुपस्थिति में सुचारू रूप से चल सकें, जो उनकी प्रशासन में योग्यता को सिद्ध करता हैं। आदि ऐसी बातें हैं। उनकी सैनिक व्यवस्था भी उतनी

ही श्रेश्ठ थी। घुड़सवार सेना और पैदल सैनिकों में पदों का विभाजन, उनके वेतन को निश्चित करना, उनकी भर्ती को खुद देखना एवं उन्हें योग्यतानुसार पद देना आदि उनके प्रमुख कार्य थे। उन्होंने गुरिल्ला पद्धति को युद्ध नीति के रूप में अपनाया। इसी कारण 17 से 18वीं शताब्दी के बीच शिवाजी की सेना अजेय सेना बन गयी थी। शिवाजी ने समुद्रतट की रक्षा के लिये मजबूत नौसेना की स्थापना की। उन्होंने यह अनुभव करके कि बढ़ती हुई मुस्लिम शक्ति का विरोध मराठों की एकता के बिना संभव नहीं है, उन्होंने मराठों को एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया। यह सत्य है कि उनका उद्देश्य एक हिन्दू राज्य की स्थापना करना था एवं उन्होंने धर्म से राजनीतिक लाभ भी उठाया, परन्तु वह कट्टरपंथी नहीं थे। उन्होंने कभी भी किसी मुसलमान को हिन्दू धर्म स्वीकार करने के लिये बाध्य नहीं किया। सर जदुनाथ सरकार के शब्दों में ''वह भारत का अंतिम हिन्दू राश्ट्र निर्माता था, जिसने हिन्दुओं के मस्तक को एक बार पुनः उठाया।''

4.8 शब्दावली

अग्रणी	–	सबसे आगे
राजतंत्रात्मक व्यवस्था	–	राजा का शासन
स्वेच्छाचारी	–	अपनी इच्छा से आचरण करने वाला
धार्मिक सहिश्णुता	–	सभी धर्मो के प्रति समानता
प्रजा वत्सल	–	प्रजा से पुत्र के समान स्नेह रखने वाला

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1. देखों भाग 4.2.2
2. (i) × (ii) √ (iii) √ (iv) ×

बोध प्रश्न–2

1. देखों भाग 4.5
2. (i) √ (ii) × (iii) √ (iv) √

बोध प्रश्न–3

1. देखों भाग 4.6
2. (i) √ (ii) × (iii) √ (iv) ×

इकाई–5

मुगलों के अन्तर्गत कृशि संकट, जाट, सतनामी, सिक्ख एवं बुंदेलों का विद्रोह

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 मुगलकाल में कृशि की स्थिति

5.3 जाटों का विद्रोह

5.4 सतनामियों का विद्रोह

5.5 सिक्खों का विद्रोह

5.6 बुंदेलों का विद्रोह

5.7 परिणाम

5.8 सारांश

5.9 शब्दावली

5.10 बोध प्रश्नो के उत्तर

5.11 सहायक ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

मुगल काल में अकबर के समय तक कृशि एवं कृशकों की स्थिति ठीक थी, लेकिन बाद में धीरे–धीरे करके किसानों की स्थिति खराब होने लगी जिसके परिणाम स्वरूप औरंगजेब के समय में जाटों एवं सतनामियों ने विद्रोह किया। सिक्ख और बुन्देलों का विद्रोह राजनीतिक कारणों से हुआ परन्तु औरंगजेब की हिन्दुओं के प्रति धार्मिक असहिश्णुता की नीति के कारण बाद में ये सभी विद्रोह धार्मिक कारणों से जुड़ गये। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जानेंगे कि–

(1) मुगलकाल में कृशि की स्थिति

(2) जाटो, सतनामियों, सिक्खों एवं बुन्देलों के विद्रोह

(3) परिणाम

5.1 प्रस्तावना

मुगलकाल में अकबर के समय तक भू–राजस्व की अत्यधिक वसूली के उपरान्त भी कृशकों की दशा अच्छी थी एवं उन्हें किसी प्रकार की कोई तकलीफ नहीं थी लेकिन शाहजहां

के द्वारा स्थापत्य कला पर अत्यधिक धन व्यय किये जाने के कारण धीरे–धीरे कृशकों की स्थिति खराब होने लगी और औरंगजेब के समय तक आते–आते किसान अत्यंत गरीब हो गये, जिसका परिणाम हमें जाटों एवं सतनामियों के विद्रोह के रूप में देखने को मिलता है क्योंकि जाट एवं सतनामी मूल रूप से किसान ही थे। सिक्ख एवं बुन्देलों का विद्रोह राजनीतिक कारणों से हुआ लेकिन बाद में औरंगजेब की हिन्दुओं के प्रति धर्मान्ध नीति के कारण ये सारे विद्रोह जो अलग–अलग कारणों से आरम्भ हुए थे उससे जुड़ गये।

5.2 मुगलकाल में कृशि की स्थिति

बाबर ने 1526 ई0 में मुगल वंश की नींव डाली। मुगलकाल में कृशि मुख्य व्यवसाय था। अतः बाबर एवं हुमायूँ के समय में कृशि एवं कृशकों की स्थिति अच्छी थी। अकबर ने गद्दी पर बैठते ही कृशि की उन्नति के लिये बहुत सारे सुधार किये। जिससे कृशकों की स्थिति भू–राजस्व देने के बाद भी अच्छी थी। उसने किसानों की सुविधा के लिये अनेक योजनायें चलायी लेकिन शाहजहाँ के समय में उसके द्वारा स्थापत्य कला पर अत्यधिक धन व्यय किया गया और यह धन कृशकों से भू–राजस्व के रूप में प्राप्त होने वाला धन ही था। जिससे राज्य की आर्थिक स्थिति खराब होने लगी जिसका प्रभाव कृशि एवं कृशक दोनों पर पड़ा। जागीरदारों द्वारा उन पर भूराजस्व अत्यधिक बढ़ा दिया गया, जिससे कृशकों में असंतोश पैदा होने लगा। बीच–बीच में पड़ने वाले अकालों ने भी कृशि का विनाश कर दिया। इधर औरंगजेब जब गद्दी पर बैठा तब उसका ज्यादातर समय युद्धों में बीता। इन युद्धों में भी धन का अत्यधिक अपव्यय हुआ और युद्धों में व्यस्त रहने के कारण वह कृशकों की समस्याओं की ओर कोई ध्यान नहीं दे पाया। इधर जागीरदारों द्वारा कृशकों से भूराजस्व पहले से अधिक कठोरता से वसूल किया जाने लगा और कृशकों की स्थिति इतनी अधिक खराब हो गयी कि उनके पास खुद के खाने के लिये भोजन एवं पहनने के लिये वस्त्र नहीं थे। जिसकी परिणिति हम जाट एवं सतनामियों के विद्रोह के रूप में देखते हैं।

5.3 जाटों का विद्रोह

अकबर तथा जहांगीर के शासन काल में जाटों को काफी सुविधायें प्रदान की गयी थीं लेकिन फिर भी जहांगीर एवं शाहजहां के काल से ही जाटों के द्वारा विद्रोह किया जाने लगा था। औरंगजेब के काल में भी दिल्ली और आगरा के क्षेत्रों में बसी जाटों की आबादी ने विद्रोह करना प्रारम्भ कर दिया था। जाटों के साथ टकराव की पृष्ठभूमि में किसानों की समस्यायें तथा भू–अधिकारों के प्रश्न थे। जाट मुख्य रूप से किसान जोतदार थे और उनमें से कुछ ही लोग जमींदार थे। सरकार से जाटों की टक्कर बहुधा होती रहती थी और अपने इलाके की दुर्गमता का लाभ उठाकर वे जब–तब विद्रोह कर बैठते थे। भू–राजस्व के उगाही के प्रश्न पर जहाँगीर और शाहजहाँ के शासन काल में भी मुगलों से उनकी टक्कर हुई थी लेकिन जाटों के द्वारा सबसे ज्यादा तेजी से विद्रोह औरंगजेब के शासनकाल में किये गये।

1669 ई0 में गोकला नामक एक स्थानीय जमींदार के नेतृत्व में मथुरा इलाके के जाटों ने विद्रोह कर दिया। विद्रोह शीघ्र ही उस क्षेत्र के किसानों के बीच में फैल गया और औरंगजेब ने उसे दबाने के लिये खुद ही दिल्ली से कूच करने का फैसला किया घमासान लड़ाई के पश्चात् जाट पराजित हुये, गोकला को बंदी बनाकर मार डाला गया। लेकिन यह आंदोलन पूरी तरह से दब नहीं पाया और अंदर ही अंदर जाटों में असंतोश सुलगता रहा।

1685 ई0 में राजाराम के नेतृत्व में जाटों ने दूसरा विद्रोह किया इस बार जाट अधिक संगठित थे एवं उन्होंने छापामार लड़ाई का तरीका अपनाया और साथ ही साथ लूटपाट का भी सहारा लिया। विद्रोह को दबाने के लिये बिशन सिंह को मथुरा का फौजदार बनाया गया। जमींदारी हकों को लेकर जाटों और राजपूतों के बीच संघर्श होता गया। ज्यादातर जमीन के मालिक जाट थे जबकि मध्यवर्ती जमींदार भूजराजस्व की वसूली करने वाले लोग राजपूत थे। जाटों ने डटकर मुकाबला किया परन्तु 1688 ई0 में राजाराम और मुगल सेना में संघर्श के दौरान राजाराम की हत्या कर दी गयी। लेकिन 1691 ई0 में राजाराम के उत्तराधिकारी चूड़ामन ने जाटों को संगठित किया। आगे चलकर 18वीं शताब्दी में मुगलों के गृह कलह और केन्द्र सरकार की कमजोरी का लाभ उठाकर राजपूत जमींदारों को वहां से उखाड़ फैंका उसके पश्चात् चूड़ामन ने भरतपुर में स्वतंत्र जाट राज्य स्थापित कर लिया। जिससे यह स्पश्ट हो जाता है कि जाटों का विद्रोह धार्मिक न था, वास्तव में जाट कृशिजीवी थे और उनका विद्रोह आर्थिक था लेकिन औरंगजेब की हिन्दुओं के प्रति धर्मांध नीति के कारण यह धार्मिक विद्रोह के रूप में बदल गया था।

बोध प्रश्न–1

1. औरंगजेब के समय में जाटों के विद्रोह पर दस पंक्तियाँ लिखिये।
2. निम्नलिखित कथनों में से कौन–सा सही है और कौन–सा गलत। सही कथन के सामने (√) तथा गलत कथन के सामने (×) का चिन्ह लगाये–

   i मुगलकाल में पशुपालन प्रमुख व्यवसाय था।

   ii सबसे पहले गोकला के नेतृत्व में जाटों ने विद्रोह किया।

   iii चूड़ामन ने भरतपुर में जाटों के स्वतंत्र राज्य की स्थापना की।

   iv सतनामी मुड़िया के नाम से भी जाने जाते थे।

5.4 सतनामियों का विद्रोह

अभी जाटों का विद्रोह शांत भी नहीं हुआ था कि दिल्ली से 75 मील दूर दक्षिण–पश्चिम में नारनौल और मेवात जिलों में 1672 ई0 में सतनामियों ने विद्रोह कर दिया। सतनामियों का धार्मिक सम्प्रदाय पर्याप्त विख्यात था। सतनामियों में अधिकांशतः कृशक, कारीगर और निम्न जाति के लोग थे। तत्कालीन लेखकों ने सुनार, भंगी, बढ़ाई आदि निम्न जाति के लोगों

को भी सतनामियों में सम्मिलित किया है, ये लोग हिन्दू मुसलमानों के बीच किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करते थे।

सतनामियों को **'मुड़िया'** के नाम से भी जाना जाता था, ये सदैव संयासियों के भेश में रहते थे। इनका मुख्य व्यवसाय कृशि और व्यापार था, इनका व्यापार लघु स्तर का था। 1672 ई0 में एक दिन एक सतनामी और स्थानीय भू–राजस्व अधिकारी के बीच नारनौल में संघर्श छिड़ गया, उस अधिकारी ने सतनामी का सिर फोड़ दिया जिस कारण अनेक सतनामी एकत्रित हो गये और उस अधिकारी की पिटाई लगाई जिसके पश्चात् उसकी मृत्यु हो गयी। तब शिकदार ने उन सतनामियों को गिरफ्तार करने के लिये सैनिकों को भेजा। सतनामियों का उनसे युद्ध हुआ। सतनामियों ने अनेक सैनिकों को घायल कर दिया और उनके हथियार छीन लिये। उसके बाद उन्होंने नारनौल के फौजदार कर्तलब खान को मारकर वहां पर अपना अधिकार कर लिया। जब विद्रोह की खबर बादशाह के पास पहुंची उसने एक के बाद एक कई फौज सतनामियों का दमन करने के लिये भेजी परन्तु वे सभी नाकामयाब रहीं, अन्त में औरंगजेब स्वयं आया और उसने विद्रोह का दमन किया।

5.5 सिक्खों का विद्रोह

1675 ई0 में औरंगजेब को सिक्ख विद्रोह का सामना करना पड़ा। लगभग मुगल साम्राज्य की स्थापना के साथ ही सिक्ख सम्प्रदाय की स्थापना हुई थी। बाबर के सिक्खों के प्रथम गुरू गुरूनानक से सम्बन्ध अच्छे रहे। चौथे गुरू तक मुगलों और सिक्खों के सम्बन्ध अच्छे रहे लेकिन बाद में पांचवे गुरू अर्जुनदेव के समय से सिक्खों और मुगलों के सम्बन्ध बिगड़ने लगे। शाहजहां के शासन काल में भी गुरू हरगोविन्द एवं मुगलों की सेना में दो बार मुठभेड़ हुई।

औरंगजेब के काल में सिक्खों एवं उसके सम्बन्ध तेजी से खराब होते चले गये। गुरू हरगोविन्द की मृत्यु के पश्चात् चौदह वर्शीय हरिराय उनके उत्तराधिकारी बने जिन्होंने दाराशिकोह को उत्तराधिकार के युद्ध में सफलता के लिए शुभकामनाएं दी थीं। अतः गुरू हरिराय के प्रति औरंगजेब का असंतोश स्वाभाविक था और जब वह दारा का पीछा करता हुआ लाहौर पहुंचा तो उसने गुरू को उक्त कार्य का उत्तर देने के लिये दरबार में उपस्थित होने का आदेश दिया किन्तु गुरू ने अपने स्थान पर अपने ज्येश्ठ पुत्र रामराय को भेज दिया जो मुगल दरबार में पहुंचकर औरंगजेब का कृपापात्र बन गया। 1661 ई0 में हरिराय की मृत्यु हो गयी और अपनी मृत्यु से पूर्व ही उन्होंने हरिकिशन को अपना उत्तराधिकारी घोशित कर दिया था। जबकि औरंगजेब उनके छोटे पुत्र रामराय को गुरू बनाना चाहता था। अतः औरंगजेब ने बातचीत करने के उद्देश्य से गुरू हरिकिशन को दिल्ली आमंत्रित किया लेकिन इससे पूर्व ही गुरू हरिकिशन की चेचक निकलने से मृत्यु हो गयी लेकिन गुरू हरिकिशन ने अपने मृत्यु से पूर्व अपने पिता के चाचा तेगबहादुर को गुरू बनाये जाने की घोशणा कर दी

थी। अतः गुरू हरिकिशन की मृत्यु के बाद तेगबहादुर को 1664 ई0 में गुरू घोशित कर दिया गया। प्रारम्भ में उनके मुगलों के साथ अच्छे सम्बन्ध रहे और उनकी तरफ से उन्होंने अनेक युद्धों में भी भाग लिया लेकिन जब वह वापिस पंजाब पहुंचे तब उन्होंने परिस्थितियों को बिल्कुल बदला हुआ पाया। औरंगजेब की धार्मिक नीति के कारण सिक्खों में असंतोश था। इस कारण गुरू को मुगलों का विरोध करना पड़ा। औरंगजेब ने विद्रोह को शांत करने के लिये शाही सेना भेजी। विद्रोह शांत कर दिया गया और गुरू तेगबहादुर को पकड़ कर 1675 ई0 में औरंगजेब के सम्मुख दिल्ली लाया गया और उन पर इस्लाम स्वीकार करने के लिये दबाव डाला गया परन्तु गुरू ने इस्लाम अपनाना स्वीकार नहीं किया। अतः पाँच दिन यातनायें देने के बाद औरंगजेब के हुक्म से उनका सिर धड़ से अलग कर दिया गया।

गुरू तेगबहादुर की मृत्यु के पश्चात् गुरू गोविन्दसिंह उनके उत्तराधिकारी बने लेकिन पिता के बलिदान ने उनकी भावनाओं को झकझोर दिया और उन्हें मुगल साम्राज्य का कट्टर शत्रु बना दिया था, औरंगजेब का विरोध करने के लिये पहले उन्होने अपने तौर–तरीके बदले और एक राज्य कायम किया। उन्होंने 1699 ई0 में **'खालसा पन्थ'** की स्थापना की तथा सिक्खों की सेना का संगठन कर आनंदपुर को अपना केन्द्र बनाया। गुरू गोविन्द सिंह ने अपने सैनिक रूपी संतों को एक विशेश परिधान धारण करने का आदेश दिया जिसमें पाँच वस्तुयें– कड़ा, कच्छा, कंघा, केश तथा कृपाण धारण करना अनिवार्य था। जिससे सिक्ख जो एक धार्मिक सम्प्रदाय था अब वह एक सैन्यदल में परिवर्तित हो गया था। गुरू ने अपने लगभग 80000 कट्टर समर्थक तैयार किये।

कुछ समय तक गुरू ने स्थानीय शासकों और कश्मीर के राजाओं से युद्ध किया एवं अपने राज्य का विस्तार करके अपनी शक्ति को बढ़ाया। इसके पश्चात् पहाड़ी राजाओं ने औरंगजेब से सहायता मांगी तब गुरू का औरंगजेब से युद्ध हुआ और युद्धों की एक श्रृंखला सी बन गयी। 1704 ई0 में मुगलों की सेना ने आनन्दपुर को घेर लिया। लम्बे समय तक घेराबन्दी के कारण सिक्खों की भूखे मरने की स्थिति आ गयी। गुरू गोविन्द सिंह किसी प्रकार वहां से निकलने में कामयाब हो गये तथा गांव चमकौर के एक जमींदार के यहां उन्होंने शरण ली। शीघ्र ही मुगलों को उनके शरण स्थल का पता चल गया और मुगलों की विशाल सेना ने चमकौर गांव को घेर लिया। गुरू गोविन्द के साथ मात्र चालीस सैनिक थे, फिर भी सिक्खोंने मुगलों का सामना किया। इस युद्ध में गुरू गोविन्द सिंह के दो पुत्र अजित सिंह व जुझार सिंह वीर गति को प्राप्त हुए। गुरू गोविन्द सिंह किसी प्रकार वहां से निकलने में सफल हो गये। उनके दो पुत्रों जोरावर सिंह व फतेह सिंह को उनका रसोईया अपने साथ अपने गांव सहेड़ी ले गया, किन्तु वहां उसके मन में पाप आ गया। उसने गुरू गोविन्द सिंह के दोनों पुत्रों को मुगलों के हवाले कर दिया। औरंगजेब ने इन दोनों को मुसलमान बनाने का प्रयास किया किन्तु उनके द्वारा इंकार करने पर औरंग जेब ने दोनों को जिन्दा दीवार में चिनवा दिया। लेकिन गुरू गोविन्द ने अपना हौसला छोड़ा नहीं और उन्होंने अपना अभियान

जारी रखा। उनके इस अभियान से हिन्दुओं में राश्ट्रीयता एवं हिन्दुत्व की भावना जागृत हो गयी परन्तु अंत में गुरू गोविन्द सिंह औरंगजेब से शान्तिवार्ता के लिये तैयार हो गये और उन्होंने औरंगजेब को फारसी में एक पत्र लिखा जिसे **'जफरनामा'** कहा जाता है। उससे प्रभावित होकर बादशाह ने उन्हें अपनी सेवा में उपस्थित होने का आदेश दिया परन्तु गुरू गोविन्द सिंह के दक्षिण पहुंचने से पूर्व ही 1707 ई0 में औरंगजेब की मृत्यु हो गयी। औरंगजेब के पुत्र बहादुरशाह ने गुरू को पांच हजार का मनसब प्रदान किया। गुरू गोविन्द सिंह को बादशाह ने दक्षिण के अभियान पर भेजा। जहाँ नान्देड़ नामक स्थान पर एक पठान ने 1708 ई0 में उनकी हत्या कर दी। इसके साथ ही दस गुरूओं की वंश परम्परा का अंत हो गया लेकिन उनके प्रयासों से सिखों का एक शक्तिशाली संप्रदाय बनकर तैयार हो गया। जिसके कारण आने वाले समय में पंजाब की राजनीति में सिक्खों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

बोध प्रश्न–2

1. औरंगजेब के सिक्खों के साथ सम्बन्ध पर दस पंक्तियाँ लिखिये।
2. निम्नलिखित कथनों में से कौन–सा सही है और कौन–सा गलत। सही कथन के सामने (√) तथा गलत कथन के सामने (×) का चिन्ह लगाये–

   i गुरू हरिराय ने हरिकिशन को अपना उत्तराधिकारी घोशित किया।

   ii औरंगजेब ने गुरू तेगबहादुर को मृत्यु दण्ड प्रदान किया।

   iii 1699 ई0 में गुरू गोविन्द सिंह ने खालसा पन्त की स्थापना की।

   iv गुरू गोविन्द सिंह ने औरंगजेब को हिन्दी में पत्र लिखा।

5.6 बुंदेलों का विद्रोह

शाहजहाँ के शासनकाल में बुन्देलों ने जुझार सिंह के नेतृत्व में विद्रोह किया जो वीर सिंह देव का पुत्र था। वीर सिंह देव जहाँगीर का परम मित्र था। उसे जहाँगीर द्वारा अनेक विशेशाधिकार प्राप्त थे। 1627 ई0 में वीर सिंह देव का निधन हो गया और उसका ज्येश्ठ पुत्र जुझार सिंह उसकी जागीर ओरछा का स्वामी हुआ। जहांगीर की मृत्यु के पश्चात् शाहजहां गद्दी पर बैठा एवं उसने जुझार सिंह को आगरा आने के लिए आमंत्रित किया। 10 अप्रैल 1628 ई0 को वह आगरा पहुंचा जहां शाहजहाँ ने उसका बड़ा आदर सत्कार किया और उसे यथोचित पुरस्कार दिया परन्तु कुछ दिनों बाद ही बादशाह ने यह आज्ञा दी कि जुझार सिंह के पिता ने अनुचित रीति से जो सम्पत्ति प्राप्त की थी उसकी जांच की जाये। जुझार सिंह ने इसे अपना अपमान समझा और बिना बादशाह की आज्ञा से वह आगरा से भाग निकला। ओरछा पहुंचने पर उसने युद्ध की तैयारी प्रारम्भ कर दी। शाहजहाँ ने महावत खाँ के नेतृत्व में एक विशाल सेना जुझार सिंह के विरूद्ध भेजी युद्ध में जुझार सिंह परास्त हो गया और उसने बादशाह से क्षमा मांग ली। शाहजहाँ ने उसे क्षमा कर दिया परन्तु जुझार सिंह को

बहुत सा धन हर्जाने के रूप में देना पड़ा एवं उसे अपनी सेना सहित शाहजहाँ की आज्ञा के कारण शाही सेनाओं के साथ दक्षिण में लड़ने के लिये जाना पड़ा। इस प्रकार बुन्देलों के प्रथम विद्रोह को शान्त कर दिया गया।

जुझार सिंह ने यद्यपि शाही आज्ञा का पालन किया लेकिन उसकी विद्रोही भावनायें शान्त न हुई। कुछ महीने बाद वह महावत खां से अवकाश लेकर ओरछा लौट आया और वहां पहुंचकर उसने अपने पड़ौसी राजा प्रेम नारायण पर आक्रमण कर दिया और उससे चौरागढ़ का दुर्ग छीनकर उसका वध करवा दिया। प्रेम नारायण के पुत्र ने जुझार सिंह के विरूद्ध शाहजहाँ से शिकायत की। बादशाह ने जीते हुये दुर्ग को शाही अधिकारियों को प्रदान करने तथा लूट के माल से दस लाख शाही कोश में जमा करने की आज्ञा जुझार सिंह को दी जिसे उसने मानने से इंकार कर दिया। बादशाह ने तुरन्त शहजादा औरंगजेब के नेतृत्व में एक विशाल सेना जुझार सिंह के विरूद्ध भेजी। शाही सेना के आने की सूचना पाकर जुझार सिंह अपनी पत्नी और बच्चों के साथ किले को छोड़कर भाग खड़ा हुआ। शाही सेना ने उसके दुर्ग पर अधिकार कर उसका पीछा किया किन्तु वह बहुत दिनों तक इधर–उधर भागता फिरा। अन्त में उसने गोंड के जंगलों में शरण ली परन्तु गोंडों ने उसे पकड़कर उसका वध कर दिया और उसका सिर काटकर शाही दरबार में भेज दिया।

इस प्रकार बुन्देलखण्ड के सबसे अधिक धन सम्पन्न तथा ऐश्वर्यशाली राजपूत राज्य का अंत हो गया। शाहजहाँ ने जुझार सिंह के पुत्रों एवं उसकी स्त्रियों को बंदी बनाकर दास एवं दासियाँ बना लिया जिन्हें हरम में अथवा अमीरों के यहां बड़ा ही निकृश्ट जीवन व्यतीत करना पड़ा। जुझार सिंह के विरूद्ध देवी सिंह ने मुगलों की सहायता की थी जिसके कारण ओरछा का दुर्ग उसे दे दिया गया परन्तु अन्य बुन्देला जागीरदारों ने उसके आधिपत्य को स्वीकार नहीं किया जिससे बुन्देलखण्ड में निरन्तर अशांति बनी रही। महोबा के चम्पतराय ने 1639 ई0 में मुगल प्रांतों को लूटना शुरू कर दिया। अथक प्रयास के बाद भी मुगल सेना बहुत दिनों तक उसका दमन न कर सकी। अन्त में 1642 ई0 में मुगलों से उसका समझौता हो गया और उसने मुगलों की सेवा करना स्वीकार कर लिया लेकिन उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र छत्रसाल ने औरंगजेब के विरूद्ध बुन्देलखण्ड एवं मालवा के असंतुश्ट तत्वों को संगठित कर 1671 ई0 में बुंदेलखण्ड की मुक्ति का संग्राम छेड़ दिया। उसने धमौनी और कालिंजर पर अधिकार कर लिया लेकिन 1705 ई0 में उसने औरंगजेब से संधि करना उचित समझा लेकिन 1707 ई0 में औरंगजेब की मृत्यु के उपरान्त उसने स्वयं को बुंदेलखण्ड का स्वतंत्र शासक घोशित कर दिया।

बोध प्रश्न–3

1. बुन्देलों के विद्रोह पर दस पंक्तियाँ लिखिये।
2. निम्नलिखित कथनों में से कौन–सा सही है और कौन–सा गलत। सही कथन के

सामने (√) तथा गलत कथन के सामने (×) का चिन्ह लगाये–

i औरंगजेब द्वारा देवी सिंह को ओरछा का दुर्ग दे दिया गया था।

ii जमींदारों ने मनमाने तरीके से भूराजस्व वसूलना प्रारम्भ कर दिया था।

iii औरंगजेब की मृत्यु 1705 ई0 में हुई थी।

iv छत्रसाल ने बुन्देलों के स्वतंत्र राज्य की स्थापना की।

5.7 परिणाम

औरंगजेब के शासनकाल में होने वाले सभी विद्रोह नये नहीं थे कुछ विद्रोहों का सामना उसके पूर्वज भी कर चुके थे लेकिन औरंगजेब के शासनकाल में हुये इन विद्रोहों का स्वरूप पूर्ण परिवर्तित हो गया और इनके परिणाम भी घातक निकले। इन सभी विद्रोहों का स्वरूप अलग–अलग था जैसे जाटों एवं सतनामियों के विद्रोह का कारण आर्थिक था, सिक्खों एवं बुन्देलों के विद्रोह का प्रारम्भ राजनीतिक कारणों से हुआ परन्तु बाद में यह सारे विद्रोह उसकी धार्मिक असहिश्णुता की नीति से जुड़ गये और धीरे–धीरे इन सभी में अपना अलग–अलग राज्य बनाने की इच्छा भी तेजी से बलवती होने लगी। इसलिये यह कहा जा सकता है कि विद्रोह के कारण भले ही भिन्न–भिन्न थे पर उनका स्वरूप कमोवेश एक सा ही था। चूंकि ये आंदोलन हिन्दुओं द्वारा मुस्लिम सत्ता के विरूद्ध किये गये थे अतः इन आंदोलनों में अधिक से अधिक हिन्दु लोगों को सम्मिलित करने के लिए उनकी धार्मिक भावनाओं को कुरेदा गया जिसके कारण इन सब विद्रोहों ने मुगल साम्राज्य की जड़ों को हिला दिया जिसका परिणाम हमें मुगल साम्राज्य के पतन के रूप में देखने को मिलता है।

5.8 सारांश

औरंगजेब से पूर्व ही मुगलों की आर्थिक स्थिति खराब होने लगी थी। इसके बावजूद औरंगजेब निरन्तर युद्धों में लगा रहा और उसने कृशि एवं कृशकों की स्थिति सुधारने के लिये कोई प्रयास नहीं किया। जिससे जमींदार अपने मनमाने तरीके से भूराजस्व वसूल करने लगे और कृशकों के द्वारा इसका विरोध किया जाने लगा। जिसका परिणाम हम जाटों एवं सतनामियों के विद्रोह के रूप में देखते हैं। जहाँगीर के समय से ही धीरे–धीरे मुगलों के सम्बन्ध सिक्खों से खराब होने लगे थे इसका वास्तविक कारण शुरू में राजनीतिक था लेकिन औरंगजेब के द्वारा सिक्ख गुरूओं के प्रति अपमानजनक व्यवहार किये जाने के कारण सिक्खों में असंतोश की भावना पैदा होने लगी जिसके परिणामस्वरूप इन विद्रोहों ने धार्मिक विद्रोह का रूप ले लिया और यह विद्रोह तेजी से फैलता चला गया। सिक्ख मुगलों के कट्टर शत्रु बन गये और उन्होंने स्वयं को पृथक संप्रदाय के लिए रूप में स्थापित कर लिया। बुंदेलखण्ड में भी औरंगजेब के द्वारा अपनाई गयी कट्टर नीति के कारण तेजी से उसके विरूद्ध विद्रोह फैला और चंपत राय की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र छत्रसाल ने औरंगजेब को कड़ी टक्कर

दी एवं औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसने बुन्देहखण्ड पर अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया।

5.9 शब्दावली

भूराजस्व – लगान

जांगीरदार – भूमि का अधिकारी या मालिक

जोतदार – दूसरे की भूमि पर खेती करने वाला

ज्येश्ठ – बड़ा

आत्मसमर्पण – स्वयं को दूसरे के सुपुर्द कर देना

बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1. देखों भाग 5.3
2. (i) × (ii) √ (iii) √ (iv) √

बोध प्रश्न–2

1. देखों भाग 5.5
2. (i) √ (ii) √ (iii) √ (iv) ×

बोध प्रश्न–3

1. देखों भाग 5.6
2. (i) √ (ii) √ (iii) × (iv) √

Notes

Notes

Notes